सत्प्रकरण

एवं स्वप्रवृत्तिम् उपपाद्य बाधकशास्त्राणां निवृत्त्यर्थं शास्त्रम् आरभते प्रपञ्च इति.
प्रपञ्चो भगवत्कार्यस्तद्रूपो माययाऽभवत्।।
तच्छक्त्याऽविद्यया त्वस्य जीवसंसार उच्यते।।२३।।

प्रपञ्चमेव मिथ्या इति उक्त्वा शुद्धं भजनं वारयन्ति तथा अन्ये जीवं व्यापकम् उक्त्वा. अत: उभयनिराकर-णार्थं जीव-जडयो: स्वरूपम्उच्यते.

अयं प्रपञ्चो न प्राकृत:, नापि परमाणुजन्य:, नापि विवर्तात्मा, नापि अदृष्टद्वारा जात:, नापि असत: सत्ता – रूप: किन्तु भगवत्कार्य: परमकाष्ठापन्नवस्तुकृतिसाध्य:. तादृशोऽपि भगवद्रूप:. अन्यथा असत: सत्ता स्यात्. सा च अग्रे वैनाशिकप्रक्रियानिराकरणे निराकरिष्यते. वैदिकस्तु एतावानेव सिद्धान्त:. वैष्णवानुसारेण किञ्चित् साधनम् अधिकम् आह माययाऽभवद् इति. माया हि भगवत: शक्तिः, सर्वभवनसामर्थ्यरूपा, तत्रैव स्थिता. यथा पुरुषस्य कर्मकरणादौ सामर्थ्यम्. तेन स्बसामर्थ्येन अन्यान् उपजीवनेन स्बात्मरूपं प्रपञ्चं कृतवान् इति फलितम्.

या प्रकारसुं या ग्रन्थकी रचनामें अपनी प्रवृत्तिको औचित्य प्रतिपादित करिकें अब श्रीआचार्यजी बाधक शास्त्रन्के निराकरणके अर्थ प्रस्तुत शास्त्रको आरम्भ करे हें.

श्लोकार्थ:ये जगत्-पप्रञ्च भगवान्को कार्य हे तथा भगवद्रूप हे. ये भगवान्की मायासुं उत्पन्न भयो हे. भगवान्की अविद्याश-क्तिके कारण जीवकुं अहन्ता-ममतात्मक संसार प्राप्त होवे हे एसे कह्यो जावेहे.

कितनेक मतवादी जगत्कुं मिथ्या किहकें भगवद्भिक्तिको निवारण करे हें. अर्थात् जेसें स्वप्नके पदार्थन्सों सेवा नहीं कर सके हें एसें ही जगत्के पदार्थ भी स्वप्नके पदार्थन्के समान झूठे हें. इनसों भी भगवत्सेवा नहीं होय सके हे. ये उनको अभिप्राय हे. कितनेक मतवादी जीवकुं व्यापक बतायके भगवत्सेवासों विमुख करे हें. अर्थात् जीव सर्व ठिकानें विद्यमान हे तथा जीव ही ब्रह्म हे तो जीव कौनकी सेवा करे या रीतिसों मोह करावे हें. इन दोनों मतन्कुं दूर करिवेके अर्थ जड तथा जीव के यथार्थ ख्बरूपको वर्णन करे हें.

तहां सांख्य, पातञ्जल तथा वैद्य शास्त्रकर्ता जगत्कुं प्रकृतिसों बन्यो माने हें. ओर गौतम, कणाद, जैमिनि ऋषि जग-त्कुं परमाणुको बन्यो माने हें. तथा मायावादी जगत्कुं विवर्त्तरूप माने हें, शुक्तिका जेसे रजतको विवर्त हे वेसे. अर्थात् जेसे छीपमें चांदीको भ्रम हो जाय हे तब छीप ही चांदी दीखे हे एसे ही अनादि वासनासों जीवकु शुद्ध ब्रह्ममें जगत्को भ्रम हो रह्यो हे तासों शुद्ध ब्रह्म ही जगत् रूपसों भासमान होवे हे. तथा कणाद, गौतम, जैमिनि या जगत्के प्रति अदृष्टकुं निमित्त माने हें. सांख्यवादी या जगत्के प्रति स्बभावकुं निमित्त माने हें. मायावादी वासनाकुं या जगत्के प्रति निमित्त माने हे तथा बौद्धमतवारे जेसे बादल पहलेसों नहीं होय हें फिर अकस्मात् हो जाय हें एसें ही जगत् असतः सत्तारूप हे अर्थात्; पहले नहीं हतो—शून्य हतो फिर अकस्मात् जगत् हो गयो एसे माने हें. परन्तु या रीतिको जगत् नहीं हे.

जगत् भगवान्को कार्य हे. "तदात्मानं स्वयमकुरुत" इत्यादि श्रुतिन्के अनुसार परब्रह्मको अविकृत परिणाम ये जगत् हे. अर्थात् परब्रह्म पुरुषोत्तम ही अनेक प्रकारसों लीला करिवेके अर्थ प्रपश्च-जगत्रूप होय रहे हें. आप ही याके करिवेवारे हें. वेदको ये ही सिद्धान्त हे. ओर श्रीमद्भागवत तथा वैष्णवशास्त्र श्रीनारदपञ्चरात्र को भी ये ही सिद्धान्त हे कि भगवान्में सर्वभव-नसामर्थ्य हे अर्थात्; पुरुषोत्तममें एसी अद्भुत सामर्थ्य हे के जेसो रूप धारण करनो चाहें वेसे ही हो जावे हें. वा सामर्थ्यसों

आप जगत्रूप भये हें, वा ही सामर्थ्यकों माया कहे हें. वाको वर्णन वेदमें ''पराख्य शक्तिर् विविधैव श्रूयते खाभाविकी ज्ञान-बलक्रिया च'' या मुण्डकश्रुतिमें हे.

अत्र संसार-प्रपञ्चयोः भेदाज्ञानात् केचिन् मुग्धा भवन्ति. तन्मोहनिराकरणाय भेदं निरूपयित अविद्यया इति. अविद्यापि तच्छिक्तः, मुख्यासु द्वादशशिक्तषु गणनात्, "श्रिया पुष्ट्या गिरा" (भाग.पुरा.१०।३९।५५) इति वाक्यात्. एवं सित "स वै नैव रेमे, तस्साद् एकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्, स हैतावानास" (बृहदा.उप.१।४।३) इति श्रुतौ रमणार्थमेव प्रपञ्चरूपेण आविर्भावोक्तेः, वैचित्र्यं विना तदसम्भवो यतः, तस्साद् हेतोः, अस्य भगवतः शक्त्या अवि द्यया जीवस्य संसारः उच्यते न तु जायते, अभिमत्यात्मकत्वात्, असत्त्वेन अस्य गणनात्. अज्ञानं भ्रमः, 'असद्'इत्या-दिशब्दाः अहं-ममेतिरूपे संसारएव प्रवर्तन्ते नतु प्रपञ्चे इति अर्थः, तस्य ब्रह्मात्मकत्वात्.

यहां कितनेक वादी संसार तथा जगत्कुं एक समुझिकें जगत्कुं भी मिथ्या माने हें ये उनकी भूल हे. क्योंके प्रपञ्च-जगत् तथा जीव इनके नाम हें. ओर जगत्के उपादान कारण भगवान् हें. ओर जेसें मनुष्य अपनी सामर्थ्यसों काम करे हें वो मनुष्यकी सामर्थ्य मनुष्यसों जुदा नहीं हे एसें ही भगवान् अपनी सर्वभवन सामर्थ्यसों जगत् बनावे हें वो सामर्थ्य भगवान्सों जुदी नहीं हे. वाही सामर्थ्यकुं माया कहे हें. विद्या ओर अविद्या ये दोनों वा मायाकी शक्ति हे ओर संसार अहन्ताममताको नाम हे. संसारको उपादान कारण कोई नहीं हे. अविद्या संसारको कारण हे. संसार अज्ञानरूप हे, मिथ्या हे. प्रपञ्च सत्य हे. अविद्याको कियो भयो जो संसार हे सो जीवके अर्थ ही कियो जाय हे.

श्रीभगवान्की अनन्तसामर्थ्य हे, गणना नहीं होय सके हे. परन्तु मुख्य द्वादश सामर्थ्य हें जिनको वर्णन दशमपूर्वार्द्धमें "श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया। विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्". अर्थःश्री, पुष्टि, गिरा, कान्ति, कीर्ति, तुष्टी, इला, उर्जा, विद्या, अविद्या, माया, ह्लादिनी शक्ति. इन द्वादश सामर्थ्यन्कुं ही द्वादश शक्ति कहे हें. इनमें ही अविद्याशक्ति तथा मायाशक्ति को वर्णन हे.

इदम् उक्तं भवति. वस्त्रुतस्तु "स वै नैव रेमे" (बृहदा.उप.१।४।३) इत्यादिश्रुतिभ्यो रमणार्थमेव प्रपञ्चरूपेण आविर्भावात्, तदन्त:पातिपुरुषरूपेण तत्कृतसाधनरूपेण आविर्भ्य तत्फलरूपेण च आविर्भवन् क्रीड़ित भगवान्. एवं सित "अहम् एतत्कर्मकर्ता"—"एतज्जिनितं फलञ्च मम"—"अहम् एतस्य भोक्ता" इत्यादिज्ञानानि स्वस्य, स्विक्रियाः, तत्फलस्य च अब्रह्मत्वेन ज्ञानाद् भ्रमरूपाणि इति मन्तव्यम्. स च अहन्ता–ममतात्मकः अविद्यया क्रियते. तत्वज्ञाने सित, उक्तरूपत्वज्ञानात्, निवर्तते, नतु प्रपञ्चः, ब्रह्मात्मकत्वात्.

ननु प्रपञ्चात्मकस्य घटादे: दण्डमुद्गरात्मकेन तेन तिरोभाववत् तत्वज्ञानात्मकेन तेन तस्य तिरोभाव: इत्यपि सुवचम्. अत: न अविद्याहेतुकत्वम् असत्वं वा संसारस्य वाच्यम्, प्रपञ्चमध्यपातित्वेन ब्रह्मात्मकत्वात्.

न च एवं संसारस्य नित्यत्वापत्त्या मुक्त्युच्छेदः इति वाच्यम्. यत्कालावच्छेदेन यस्मिन् पुरुषे संसाररूपेण आविर्भावः तदवच्छेदेन संसारित्वं तस्य उच्यते, मुक्तिरूपेण आविर्भावे तु मुक्तत्वम् इति उपपत्तेः. यथा घटादिषु आमदशायां श्यामरूपेण आविर्भावे तथात्वव्यवहारः, पक्वे रक्तत्वव्यवहारः, तद्रूपेण आविर्भावात्, तथा इति.

"वाने रमण नहीं कियो, अतएव एकाकी पुरुष रमण नहीं करे हे, वाने दूसरेकी इच्छा कीनी, वो या प्रकारसुं भयो" इत्यादि. या श्रुतिमें रमणके अर्थ ही भगवान्के प्रपञ्चमें आविर्भूत होयवेकी बात कही हे. वैचित्र्य तथा वैविध्य के अभावमें रमण हो नहीं सके हे अत: रमणार्थ वैचित्र्यकी आवश्यकता हे. याही कारणसों भगवान्की अविद्या नामिका शक्तिद्वारा जीवके संसारकी बात कही जावे हे. जीवको अहन्ता-ममतात्मक संसार वस्तुत: उत्पन्न नहीं होवे हे क्योंके वो तो काल्पनिक हे तथा वाकी गणना असद्रूप अथवा मिथ्या पदार्थके रूपमें करी गई हे. तात्पर्य ये हे के अज्ञान, भ्रम तथा असत् आदि शब्दन्को शास्त्रमें प्रयोग अहन्ता-ममतात्मक जीवके संसारके अर्थ होवे हे, प्रपञ्चके अर्थ नहीं क्योंके प्रपञ्च तो ब्रह्मात्मक हे.

तात्पर्य ये हे के भगवान्के रमणार्थ ही या प्रपञ्चको आविर्भाव भया हे. अतएव या प्रपञ्चमें, प्रपञ्चमें रहे भये पुरुष अथवा जीव के रूपमें, उनके द्वारा करे जाते साधनन्के रूपमें तथा उन् साधनन्सों प्राप्त होते फलके रूपमें आविर्भूत होयकें भगवान् ही सर्वत्र क्रीड़ा करे हें. या स्थितिमें "में या कर्मको कर्ता हुं"—"या कर्मसुं उत्पन्न होयवे वारो फल मेरो हे"—"में या फलको भोक्ता हुं" इत्यादि ज्ञानकुं भ्रमरूप समझनो चिहये क्योंके या ज्ञानमें स्बयंकुं, स्बयंकी क्रियाकुं तथा वासुं उत्पन्न होते फलकुं अब्रह्मरूप समुझ्यो गयो हे. अहन्ता—ममतात्मक संसार अविद्याकी कृति हे तथा तत्वज्ञान होय जावे पर उपर्युक्त संसा- रकी निवृत्ति हो जावे हे. प्रपञ्च, परन्तु, ब्रह्मात्मक हे अतः तत्वज्ञान होय जावे पर भी प्रपञ्चकी निवृत्ति नहीं होवे हे. या प्रकार संसार तथा प्रपञ्च के बीच भेद समझनो.

प्रपञ्च तथा संसार दोनोन्कों ब्रह्मात्मक तथा सत्य मानवेवारे सत्कार्यवादी ब्रह्मवादी एकदेशी शङ्का करे हे जो जा प्रकार दण्ड-मुद्गर आदिसों प्रपञ्चात्मक घटादिको तिरोभाव हो जावे हे वाही प्रकार तत्वज्ञान होयवे पर संसारको तिरोभाव हो जावे हे एसे भी किह सकत हैं. अत: सिद्धान्तीकुं ये नहीं कहेनो चिहये के संसार अविद्यासुं उत्पन्न होवे हे जासुं वो असत् हे. वस्तुत: प्रपञ्चमध्यपाती होयवेसुं संसार भी ब्रह्मात्मक ही हे.

सिद्धान्ती ये भी नहीं कहे सके हे के या प्रकार संसारकों हु प्रपञ्चकी भांति ब्रह्मात्मक, सत्य तथा नित्य मान लेबेसों मुक्तिकी प्राप्तिकी सम्भावना ही समाप्त हो जायगी. क्योंके जा समय जा पुरुषमें भगवान्को संसार रूपसों आविर्भाव होवे हे वा समय वो पुरुष 'संसारी' कह्यो जाय हे तथा जा समय जा पुरुषमें भगवान् मुक्ति रूपसों आविर्भूत होत हें तब वो पुरुष 'मुक्त' कह्यो जाय हे. लोकमें, जेसे, जब कच्चे घट आदि श्याम पदार्थमें भगवान् श्यामरूपसों आविर्भूत होय हें तब वे घट आदि श्याम या काले कहे जाय हें तथा पक जायवे पर जब भगवान् उनमें लाल रूपसों आविर्भूत होवे हें तब वे लाल कहे जाय हें. या प्रकार भगवान्के मुक्तिरूपसों आविर्भूत होयवे पर व्यक्ति मुक्त कह्यो जायगो ओर मुक्तिके उच्छेदको प्रसङ्ग उप-स्थित नहीं होयगो.

न च अविद्यया बन्धः इति श्रुत्यादिप्रसिद्धेः न एवम् इति वाच्यम्, दण्डघटादिसमानयोगक्षेमत्वात् प्रसिद्धेः.

एवं शुद्धो ब्रह्मवादः सिद्धो भवति सन्मते।

अन्यस्याणोरिप प्राप्तौ मायापक्षो न किं भवेत्।।

न भवेत्. श्रुतितो हि प्रपञ्चस्य ब्रह्मता उच्यते. तस्य नित्यत्वाद् आविर्भाव-तिरोभावौ उच्येते. तौ च विद्यमा-नस्यैव वस्तुन: सम्भवतो, न असत:. सतश्च न असत्वम्. तथा च संसारस्य अविद्याहेतुकत्वमेव श्रुति: वदित, न प्रप-ञ्चवद् ब्रह्मरूपताम्. प्रपञ्चरूपेण आविर्भावम् उक्त्वा यदिवद्यया संसारम् आह, विद्यया तद् अभावञ्च आह. अत: प्रपञ्चभिन्नत्वम् अवश्यम् उररीकार्यम्. तथा सित असत्वमेव सम्पद्यते संसारस्य.

यच्च उक्तं दण्ड-मुद्गर-घटादिसमानयोगक्षेमत्वम् अविद्या-विद्याकृतबन्धमोक्षयो: इति तत्रपि उच्यते. स्थादे-वम् यदि प्रपञ्चमध्यपातित्वं स्थात् संसारस्य, नच एवम्, कारणभेदात्. निह यौक्तिकम् इदं शास्त्रे किन्तु श्रौतिमिति आस्त्रिकै: तथैव मन्तव्यम् इति।।२३।।

एकदेशी पुन: शङ्का करे हे : सिद्धान्तीको ये कहेनो भी ठीक नहीं हे के श्रुतिमें बन्धनकुं अविद्याजन्य कह्यो गयो हे अत: बन्धनात्मक संसारकुं मिथ्या ही माननो चिहये, ब्रह्मात्मक, सत्य तथा नित्य नहीं. क्योंके बन्धन रूप संसार तथा दण्ड-घटादिमें समानता प्रसिद्ध हे. फलत: संसारकुं मिथ्या स्बिकार करिवे पर दण्ड-घट आदिकुं भी मिथ्या मानवेको अनिष्ट प्रसङ्ग उपस्थित होयगो. यासुं संसारकुं मिथ्या मानवेको सिद्धान्त ठीक नहीं हे. अत: संसार तथा प्रपञ्च दोनोन्कुं सत्य माननो ही उचित हे.

एकदेशी सङग्रहश्लोकसुं अपने मतको उपसंहार करे हे. या प्रकार संसार तथा प्रपञ्च दोनोन्कुं ब्रह्मात्मक एवं सत्य मानवेसुं सत्कार्यवादी हमारे मतमें शुद्ध ब्रह्मवादकी सिद्धि हो जाय हे. सिद्धान्तीके पक्षमें प्रपञ्चकुं सत्य मानते भये भी संसारकु मिथ्या मान लेवेसुं तथा या प्रकार मायिकत्व अथवा मिथ्यात्व को आंशिक स्बीकार कर लेवेसुं शुद्ध ब्रह्मवादकी सिद्धि नहीं हो सके हे. प्रपञ्चमध्यपाति संसारकु मिथ्या तथा मायिक माननो प्रकारान्तरसुं मायावादके पक्षको स्बीकार नहीं कह्यो जायगो?

संसारकु मिथ्या माननो मायावादीके पक्षको स्बीकार नहीं कह्यो जा सके हे.

सिद्धान्तमें प्रपञ्चकी ब्रह्मात्मकताको प्रतिपादन श्रुतिवचनके आधार पर कियो जाय हे. प्रपञ्च नित्य हे तासुं वाके आविर्भाव-तिरोभाव होयवेको प्रतिपादन कियो जाय हे. आविर्भाव-तिरोभाव विद्यमान अर्थात् सत्ताशील पदार्थके ही सम्भव हें, असत् पदार्थके नहीं. सत् पदार्थको विनाश अर्थात् असत् हो जानो भी सम्भव नहीं हे. ओर श्रुतिमें भी संसारकी अविद्या-जन्यता कही गई हे. श्रुतिमें कहुं संसारकु प्रपञ्चकी न्यांई ब्रह्मात्मक अथवा सत्य नहीं बतायो गयो हे. पूर्वादाहृद बृहदारण्यक श्रुतिमें ब्रह्मके प्रपञ्च रूपमें आविर्भूत होयवेको प्रतिपादन करके अविद्यासों संसारकी उत्पत्ति तथा विद्यासों वा मिथ्या संसारके नाशको प्रतिपादन भयो हे. अतः संसारको प्रपञ्चसुं भिन्न होनो श्रुतिसिद्ध हे. फलतः संसारकु प्रपञ्चसों भिन्न तथा विद्याद्वारा विनाश्य मनवे पर वाकु असत् ही माननो पड़ेगो.

ओर एकदेशीने जो ये कही के दण्ड-मुद्गर-घटादि तथा अविद्याकृत बन्ध एवं विद्याकृत मोक्षमें समानता हे वाके विरोधमें हम ये कहनो चाहेंगे के विनकी समानताकी बात तब कही जा सकती हती के जब संसार प्रपञ्चके अन्तर्गत होतो. संसार, परन्तु, प्रपञ्चके अन्तर्गत नहीं हे क्योंके संसार तथा प्रपञ्चके कारण परस्पर भिन्न हें. अत: बन्ध तथा मोक्ष कुं दण्डमु-द्ररादिके समान कहेनो भी ठीक नहीं हे. वस्तुत: देख्यो जाय तो संसार तथा प्रपञ्चके कारण, उनको परस्पर भेद आदि विषय-न्को निर्णय शास्त्रमें युक्तिके आधार पर नहीं कियो गयो हे. अतएव सिद्धान्ती हु उक्त विषयन्को प्रतिपादन युक्तिन्के आधार पर नहीं आपितु श्रतिके आधार पर कर रह्यो हे. अत: श्रुतिमें आस्था रिखवे वारे आस्त्रिकन्कुं तो एसे ही माननो चिहये के कारणमें भेद होयवेसुं संसार तथा प्रपञ्च एक दूसेरसुं भिन्न हें।।२३।।

अस्य स्बरूपं ज्ञानपर्यन्तमेव तिष्ठति इति वक्तुम् आह संसारस्य लयो मुक्तौ इति. संसारस्य लयो मुक्तौ न प्रपश्चस्य कर्हिचित्।। कृष्णस्यात्मरतौ त्वस्य लयः सर्वसुखावहः।।

उत्पत्ति-प्रलयोः भिन्नप्रकारत्वाद् उभयोः भेदः. मुक्त्यर्थं प्रपञ्चिवलयाभावे कदापि न विलयः स्माद् इति आशङ्क्य आहं कृष्णस्मात्मरतौ इति. यदा स्मारतीच्छा तदा प्रपञ्चस्मारूपं स्मास्मिन् विलाप्य रमते. ननु एवं सित जीव-ब्रह्मणोः मुक्तिप्रकारइव उक्तः इति चेत् तत्र आहं सर्वसुखावहः इति. जीवानां तदा सुखार्थे प्रलयं करोति यथा रात्रिम्. एवं भगविदच्छां प्रपञ्चजनन-प्रलयकरणत्वेन निरूप्य जीवानाम् उत्पत्तिपूर्वकं मोक्षं निरूपियतुम् आहं पञ्चपर्वा इति. पञ्चपर्वा त्विवद्या हि जीवगा मायया कृता।।२४।।

जीवसंसारहेतुभूता अविद्या पञ्चपर्वा, तेन सर्वांशनिराकृतेन निराकृता भविष्यतीति तदर्थं भगवद्भजनं कर्तव्यम् इति वक्तुं तां प्रथमम् उक्तवान्. जीवमेव गच्छति न तु अंशान्तरम्. तस्त्राः दुर्बलत्वाय आह मायया कृता इति।।२४।।

संसारकी सत्ता तब तक ही रहे हे जब तक ज्ञान नहीं होय हे, ज्ञान होते ही संसारको नाश हो जाय हे ये समुझायवेके अर्थ ''संसारस्य लयो मुक्ती'' सुं प्रारम्भ होती अग्रिम कारिका कहत हें.

अहन्ता-ममतारूप जो संसार हे सो जहां तांई ज्ञान नहीं होय हे तहां तांई रहे हे, ज्ञान भयेसों जब जीव जीवन्मुक्त हो जाय हे तब अहन्ता-ममतारूप संसारको विलय होय जाय हे, जगत्को लय नहीं होय हे. जब भगवान्की आत्मरतीच्छा, अर्थात् सोते भये मनुष्यके समान रूबरूपके भीतर रमण करिवेकी इच्छा होय हे तब अपने बनाये भये जगत्कुं अपने रूबरूपमें लीन करले हें. तब जे जीव मुक्त नहीं भये हें उनके अहन्ता-ममतारूप संसारको सर्वथा अभाव तो नहीं होय हे, परन्तु, अभि-भव हो जाय हे. अर्थात् उनकी अहन्ता-ममता निर्वल हो जाय हे, दब जाय हे. तासों मुक्त-अमुक्त सब जीवन्कों सुख देवेके अर्थ भगवान् प्रलय करे हें।

या प्रकासुं सिद्धान्तीने प्रपञ्चकी उत्पत्ति तथा प्रलय को कारण भगविदच्छा हे ये निरूपित करिके अब जीवन्की उत्पत्तिके निरूपण पूर्वक उन जीवन्के मोक्षको निरूपण करिवेके अर्थ अविद्याको स्बरूप आदि दिखाय रहे हें.

जीवके संसारकी कारणभूत अविद्याके पांच पर्व हें. अत: इन पांच पर्वन्को पूर्ण रूपसुं निराकरण किर देवे पर अविद्या भी निरस्त हो जाय हे. अविद्याके निराकरणके अर्थ भगद्भजन करनो चहिये एसो प्रतिपादन करिवेके अर्थ प्रथम वा अविद्याको स्बरूप बतायोहे. अविद्या जीवकुं ही प्रभावित अथवा वशमें करे हे, भगवान्के अन्य अंशन्कुं नहीं।।२४।।

जीवस्बरूपनिरूपणार्थं ब्रह्मण: सकाशाद् विस्कुल्लिङ्गादिवद् उस्मवं वक्तुं कारणभूतब्रह्मस्बरूपम् आह आकाशवद् इति द्वाभ्याम्.

> आकाशवद् व्यापकं हि ब्रह्म मायांशवेष्टितम्।। सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।।२५।।

लोकदृष्ट्या दृष्टान्त:. ब्रह्मणो व्यापकत्वं, बृहत्वात्, अन्यथा 'ब्रह्म'पदप्रयोग: न उपपद्यते. आत्मरमणानन्तरं तिरोहितं भवतीति मायया तादृशभाव:, तेन वेष्टितं भवति. तस्य स्व्यरूपम् आह सर्वत: पाणिपादान्तम् इति. प्रमाणनि – रूपणाय गीतावाक्यम् उच्यते. सर्वत्र प्रदेशे पाणय: पादा: अन्ता यस्य. गति – कृतिलक्षणे क्रिये, सर्वत्र स्व्येच्छया परि – च्छेदावभानञ्च उक्तम्. सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् इति ज्ञानप्राधान्यं भोगाश्च सर्वत्र उक्ता:।।२५।।

जीवके स्वरूपको निरूपण करिवेके अर्थ, ब्रह्ममेंसों अग्निविस्फुलिङ्ग आदिकी भांति जीवके व्युच्चरित होयवेको प्रति-पादन करिवेके अभिप्रायसों प्रथम जीवके कारणभूत ब्रह्मको स्वरूप 'आकाशवद्' इत्यादि दो श्लोकन्सुं दिखावे हें.

जगत्को कारण जो ब्रह्म हे ताके स्बरूपको वर्णन करे हें. ब्रह्मको व्यापकत्व श्रुतिन्में ब्रह्मके 'बृहत्' होयवेको प्रति-पादन मिलवेसुं श्रुतिसिद्ध हे. ब्रह्मकु यदि व्यापक नहीं मान्यो जाय तो वाके प्रति 'ब्रह्म' पदको प्रयोग ही उपपन्न नहीं होयगो. अतएव ब्रह्म हे सो आकाशकी तरह सब ठिकाने व्यापक हे. आत्मरमण करे पीछे जब जगत्रूप होयके क्रीडा करिवेकी इच्छा ब्रह्मकुं होय हे तब भगवान् मायारूप धारण करे हे ओर मायारूप करिके अपनी व्यापकताकुं छिपायले हे. वा छिपी भई व्याप-कताकुं ब्रह्मज्ञानी देख सके हें.

जा ब्रह्मसुं जीव नि:सृत होवे हे वाको ख्बरूप कहे हें. सब ठिकाने आपके श्रीहस्त्त तथा चरणारविन्द ओर उनके अन्त (समग्रता) विद्यमान हें. वासों सब ही ठिकाने भगवान् गमन करे हें तथा कार्य करे हें ओर अपनी उच्छासों अपनें ख्बरूपकी हद भी दिखावे हें यह बात भी सिद्ध भई. तथा सर्वत्र ब्रह्मके नेत्र, मस्तक तथा मुखारविन्द भी विद्यमान हें. यासों सब पदार्थन्को आपकु ज्ञान हे तथा सर्वत्र भोग करते रहे हें ये बात सिद्ध भई।।२५।।

नामप्रपञ्चार्थम् आह सर्वत: श्रुतिमल्लोके इति.

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

एतादृशस्त्र परिच्छेद: सम्भविष्यति इति अत: आह सर्वमावृत्य तिष्ठति इति. एते धर्मा: प्रपञ्चोत्पत्यनन्तरमेव स्प्रष्टा भवन्ति तथापि तेषां नित्यत्वख्यापनाय प्रथमतो वचनम्.

सर्वत्र परिच्छेदस्य प्रयोजनम् आह अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म इति.

अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म ह्यविभक्तं विभक्तिमत्।।२६।।

'अनन्त'पदस्य इममेव अर्थं ज्ञापयितुं हि शब्द:. तर्हि खण्डश: स्याद् इति आशङ्क्य आह अविभक्तम् इति. अनन्तमूर्तिष्विप न परस्परं विभेद:, केवलम् इच्छया तावन्मात्रप्रकटनार्थं विभक्तिमत्।।२६।।

नाम प्रपञ्चको निरूपण करिवेके अर्थ ब्रह्मके अन्य धर्म कहत हें.

सब ठिकाने आपके श्रीकर्ण विद्यमान हें, सब ठिकाने सुनते रहे हें. उपर्युक्त श्रीहस्त, चरण, आंख, श्रीकर्ण आदि वारे साकार ब्रह्मकुं परिच्छिन्न कोई समुझ न ले तासों कहत हें जो वो ब्रह्म सभी प्रदेशन्कुं आवृत करके स्थित हे. अर्थात् ब्रह्म व्यापक-अपरिच्छिन्न हे. आपके अनन्त धर्म अर्थात् अनेक गुण प्रलयमें भी रहे हें परन्तु जगत् बनाये पीछें ही अच्छी रीतिसों प्रकट होवे हें.

सर्वत्र परिच्छेदको प्रयोजन आगेके श्लोकसुं बता रहे हें.

अनन्तमूर्ति भगवान्ने अनन्त रूपसों प्रकट होयवेके अर्थ अपने व्यापक अपिरिमित रूपमें (पिरच्छेद) पिरमाण प्रगट कियो हे. अनन्तमूर्ति होयवे पर ब्रह्म खण्ड-खण्डमें विभक्त हो जायेगो—या आशङ्काको निराकरण करत हें. भगवान् अनेक रूपसों प्रकट होय हें तथापि उन रूपन्में परस्पर भेद नहीं हे. भगवान् जितनो स्बरूप दिखानो चाहिये हे उतनो बडो ही रूप दिखायवेके अर्थ भगवान् विभागवाले हें।।२६।।

एतत् स्त्रक्रपम् उक्त्वा ततः सृष्टिं वक्तुं तदिच्छां कारणत्वेन आह बहुस्याम् इति. बहस्यां प्रजायेयेति वीक्षा तस्य हाभूत्सती।।

अनेकत्वम् उच्चनीचत्वञ्च भावयामास. भावना तस्य सती विषयाव्यभिचारिणी. ततो यज्जातं तद् आह तदिच्छामात्रत: इति.

> तिदच्छामात्रतस्त्रस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतनाः।।२७।। सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारास्त्रदिच्छया।। विस्फुल्लिङ्गा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।।२८।।

तस्मादेव, ब्रह्मभूता: नतु योगबलेन आविर्भूता:, अंशा: साकारा: सूक्ष्मपिरच्छेदा:, चेतना: चित्प्रधाना:. सर्वे असङ्ख्याता:. सृष्ट्यादौ प्रथमसृष्टौ. तत: साकारा भगवद्रूपाअपि उच्चनीचभावेच्छया निर्गताइति निराकारा जाता:. निर्गमने दृष्टान्तम् आह विस्सुनिह्नङ्गा इवाग्ने: इति. "यथाग्ने: क्षुद्रा विस्सुनिह्नङ्गा व्युच्चरिन्त" (ब्रहदा.उप.२।१।२०) इति श्रुति:. एवं जीवोद्रमम् उक्त्वा जडोद्रमम् आह सदंशेन इति. सत्प्राधान्येन।।२८।।

ब्रह्मके स्वरूपको निरूपण करिवेके पीछे अब सृष्टिको निरूपण करिवेके अभिप्रायसों ब्रह्मकी इच्छा सृष्टिको निमित्त कारण हे एसो प्रतिपादन करे हें.

भगवान्की बहुत प्रकारसों प्रकट होयवेकी इच्छा भई तब, सृष्टिके प्रारम्भमें, ब्रह्मके सङ्कल्पमात्रसों, भगवान्के स्बरूपसों, ब्रह्मरूप, बहुत छोटे, चेतनरूप-चैतन्यगुणवाले साकार जीव प्रगट भये. तदनन्तर जीव, साकार तथा भगद्रूप होयवे पर भी निराकार-निरानन्द होय गये क्योंके वे ब्रह्मकी उंचे-नीचे भावसों प्रकट होयवेकि इच्छा करिके प्रकट भये हते. जीव

ब्रह्ममेसों कौन प्रकार नि:सृत भये ये दिखायवेकुं दृष्टान्त देत हें-जेसे अग्निसों अग्निके कण निकले हें वा ही प्रकार ब्रह्मके 'चित्' अंशसों जीव निकसें हें, एसे ही ब्रह्मके 'सत्' अंशसों जड निकलें हें।।२८।।

अन्तर्याम्युद्रमम् आह आनन्दांशस्बरूपेण इति.

आनन्दांशस्बरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः।।

यथा जीवानां नानात्वं तथा अन्तर्यामिणामिप, एकस्मिन् हृदये हंसरूपेण उभयप्रवेशात्. भेदस्तु जीवेऽिप नास्तीति न कापि अनुपपत्ति:.

त्रैविध्ये हेतुम् आह सच्चिदानन्दरूपेषु इति.

सच्चिदानन्दरूपेषु पूर्वयोरन्यलीनता।।२९।। अतएव निराकारौ पूर्वावानन्दलोपत:।।

सति चिदानन्दधर्मयो: तिरोभाव:. चिति आनन्दस्य

अब सच्चिदानन्द ब्रह्ममेंसुं अन्तर्यामीके उद्गमको प्रतिपादन करतहें. ब्रह्मके आनन्दांशसों अन्तर्यामी निकलें हें. जेसे जीव अनेक हें वेसे ही अन्तर्यामी भी अनेक हें. क्योंके सबके ही हृदयमें एक जीव ओर एक अन्तर्यामी रहे हें. कदाचित् कहोंगे ''ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति'' या गीतावाक्यमें अन्तर्यामीको एकवचनमें प्रयोग हे तासों एक ही अन्तर्यामी सबके हृदयमें विराजे हे यह बात मालुम पडे हे ताको उत्तर ये हे जो या गीतावाक्यमें जो एकवचन हे सो ब्रह्मके अभिप्रायसों हे. अर्थात् अनेक अन्तर्यामीरूप होयकें सबके हृदयमें विराजमान ईश्वर एक ही हे यह जतायवेके अर्थ 'ईश्वरः' यह एकवचन हे. अनेक अन्तर्यामी होंयगे तो अनेक ब्रह्म मानने पडेंगे ओर वेदमें तो एक ही ब्रह्म मान्यो हे तासों विरोध आवेगो—एसी शङ्का भी नहीं करनी क्योंके जेसें अनेक जीवन्के साथ ब्रह्मको अभेद हे याही प्रकार अनेक अन्तर्यामिन्के साथ भी ब्रह्मको अभेद ही हे तासों अनेक ब्रह्म नहीं मानने पडेंगे. एक ही ब्रह्म अनेक अन्तर्यामीरूप तथा अनेक जीवरूप तथा अनेक जडरूप होयके प्रकट हो रह्यो हे ये ही वैदिक सिद्धान्त हे।।२९।।

जड जीव तथा अन्तर्यामी के त्रैविध्यको कारण बता रहे हें.

श्लोकार्थ : सच्चिदानन्दरूप जड़, जीव तथा अन्तर्यामीमें पूर्ववर्ती दोउन्में अर्थात् जड़ तथा जीवमें अन्य अर्थात् पश्चाद्वर्ती अंश तिरोहित रहे हें. अर्थात् जड़तत्वमें चित् तथा जीवमें आनन्द अंश तिरोहित रहे हे. अतएव जड़ तथा जीव दोउ आनन्दके तिरोहित होयवेसुं निराकार-निरानन्दहें.

आनन्दांशतिरोभावस्त्रापि ज्ञापकम् आह अतएव निराकारौ इति. भगवदाकार: चतुर्भुजत्वादि: 'आकार'शब्देन उच्यते. लोप: तिरोभाव:.

एवं स्वरूपे वैजात्यम् उक्त्वा नामतोऽपि वैजात्यम् आह जड इति.

जडो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मत:।।३०।।

सर्वस्थापि भगवत्त्वे जडादिपदप्रयोगो व्यवहार:।।३०।।

या प्रकारसुं जड़, जीव तथा अन्तर्यामी को स्बरूपत: एक दूसरेसुं विजातीय अर्थात् भिन्न होयवेको प्रतिपादन करिके अब नामकी दृष्टिसों भी इन तीनोंन्के विजातीय होयवेको प्रतिपादन करत हें. जेसें तेज दो प्रकारको हे एक तो धर्मिरूप तेज, जेसें दिया. ओर दूसरो धर्मरूप तेज, जेसें दियाको प्रकाश. एसें ही सत्-चित्-आनन्द दो प्रकारके हें एक तो धर्मीरूप सत्-चित्-आनन्द हें ओर दूसरे धर्मरूप सत्-चित्-आनन्द हें. तहां जडमें धर्मी-रूप चित्-आनन्द छिप रहे हें. ओर जीवमें धर्मरूप आनन्द छिप रह्यो हे. अन्तर्यामिमें तो तीनों धर्म प्रकट हें. वास्तवमें तीनों भगवद्रप हें तथापि उनमें 'जड' 'जीव' 'अन्तर्यामी' इन शब्दन्को प्रयोग व्यवहाररूप हे।।३०।।

एवं त्रैविध्यम् उपपाद्य चिदंशानां जीवानां संसारप्रकारम् आह विद्याविद्येइति. विद्याविद्ये हरेः शक्ती माययैव विनिर्मिते।। ते जीवस्य नान्यस्य दु:खित्वं चाप्यनीशता।।३१।।

मोक्षोऽपि एक: सर्गइति विद्यायाअपि निरूपणम्. आत्मन: स्ब्बरूपलाभो विद्यया, देहलाभो अविद्यया इति. उभयो: जीवधर्मत्वं व्यावर्तयति हरे: शक्ती इति. तेन भगविदच्छयाएव तयो: आविर्भाव-तिरोभावयो: हेतुत्वम् इति उक्तम्. अनयो: मायाधीनत्वम् आह माययैव विनिर्मिते इति. तेन "मामेव ये प्रपद्यन्ते" (भग.गीता.७।१४) इति वाक्याद् भक्तौ सत्याम् अविद्यादि निवर्तते, विद्यापि. अन्यथा नित्यमुक्तता न स्व्यात्. ते उभे जीवरूपस्त्र्यैव अंशस्त्र्य भवतः, नान्यस्त्र्य जडस्त्र्य अन्तर्यामिणो वा. जीवस्त्र्यैव दुःखित्वम् अनीशत्वञ्च।।३१।।

या प्रकार त्रैविध्यको प्रतिपादन करिके अब चिदंशभूत जीवन्कुं संसार होयवेको प्रकार दिखावें हें 'विद्या' इति.

विद्या ओर अविद्या ये दोनों भगवान्की शक्ति हें. मायाद्वारा प्रकट भई हें. यासों भगवान्नें मायाके ही आधीन किर राखी हे.

भगवान्की इच्छाके ही आधीन अविद्याको प्रकट होनो ओर छिप जानो हे. एसे ही विद्याको (आविर्भाव) प्रकट होनो ओर (तिराभाव) छिप जानो भी भगवान्की इच्छाहीके आधीन हे. विद्या-अविद्या ये दोउ जीवके धर्म नहीं हें. देहकी प्राप्ति तथा जन्म-मरण अविद्यासों होय हें. विद्यासों जीवको (मोक्ष) स्वरूपलाभ होय हे. अर्थात् ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये छे गुण अविद्याके कारण छिपे रहे हें. वे ही विद्यासों पीछे जीवमें प्रकट हो जाय हें तथा भगवान्सों प्रकट होते समयमें जेसो इनको स्वरूप हतो वेसो ही स्वरूप हो जाय हे. याहीको नाम मुक्ति हे. ये भी एक प्रकारकी भगवान्की सृष्टिलीला हे. जेसे खेलमें राजा कोई छूटे भये पुरुषकुं बांध देवे हे, कोई बंधे पुरुषकुं छोड देवे हे. ये दोनों काम राजाकी क्रीडामें ही समुझे जावे हें. भगवान्की इच्छा साधनके द्वारा ही मुक्ति देवेकी हे तासों मुक्तिके साधन वेद-पुराणमें लिखे हें. ''मामेव ये प्रपद्यन्ते माया-मेतान्तरन्ति ते''. भगवान् कहें हें:मेरे शरण आयवेवारे जीव मायाकुं तर जावे हें. भक्ति जब सिद्ध हो जावे हे तब तो जीवकी विद्या ओर अविद्या दोनों निवृत्त अर्थात् दूर होय जाय हें ओर जीव नित्य मुक्त होय जाय हे. क्योंकि भक्तिसों जीव मायाकुं भी तर जावे हे तब मायाके आधीन जो विद्या-अविद्या हें इनके निवृत्त होयवेमें कहा आश्चर्य हे विद्या-अविद्या ये दोनों जीवके ही बन्ध-मोक्ष करिवे वारी हें, जड तथा अन्तर्यामी के उपर इनको असर नहीं हे. तासों जीवकुं अविद्यासों दुःख होय हे तथा (निरंकुशता) दुराचारीपनो होय हे. (विपरित ज्ञान) उलटे ज्ञानको नाम 'अविद्या' हे. वो अविद्या दो प्रकारकी हे एक तो सम-ष्टिरूपा तथा दूसरी व्यष्टिरूपा. बहोतन्को एक समझनो समष्टि कहावे हे. जेसे बहुत वृक्षन्को समुह सो वन एसो जाननो समष्टि है. ओर वनकुं बहुतसे वृक्ष हें एसो जाननो व्यष्टि हे. एसे ही सृष्टिके पहिले मायासों उत्पन्न भई जो समूहरूप अविद्या हे वो

समाष्टिरूप अविद्या हे. वो भगवान्की शक्ति हे. न्यारे-न्यारे जो पांच पर्व हें सो व्यष्टिरूप अविद्या हे. वो जीवन्की अविद्या हे।।३१।।

अविद्याया: पञ्चपर्वाणि आह स्वरूपाज्ञानमेकम् इति.

स्बरूपाज्ञानमेकं हि पर्व देहेन्द्रियासवः।। अन्तःकरणमेषां हि चतुर्धाध्यास उच्यते।।३२।। पञ्चपर्वा त्वविद्येयं यद्बद्धो याति संसृतिम्।।

अन्त:करणाध्यास:, प्राणाध्यास:, इन्द्रियाध्यासो, देहाध्यास:, स्त्र्वरूपविस्मरणञ्च इति पञ्च पर्वाणि।।३२।। यस्त्रां सम्पूर्णायां जातायाम् अन्यधर्मैर्बद्धो जन्म-मरणे प्राप्नोति इति अर्थ:.

पांच पर्वको स्वरूप दिखावे हें. जीवकुं पहले महत् तत्व अहङ्काररूप अन्तःकरणको सम्बन्ध भयो तब अविद्यासों जीव अन्तःकरणकुं अपनो स्वरूप मानवे लाग्यो याहीको नाम 'अन्तःकरणाध्यास' हे. ये अविद्याको पिहलो पर्व हे. यासों जीवकुं ''में कर्ता हुं''—''में भोग करुं हुं''—''में जानुं हुं'' इत्यादिक अभिमान होवे हें. ता पीछे अहंतत्वको दूसरो रूप जो प्राण हे वाके साथ जीवको सम्बन्ध भयो. तब अविद्याके कारण जीव प्राणनुकुं अपनो स्वरूप मानवे लग्यो. याको नाम 'प्राणाध्यास' हे. ये अविद्याको दूसरो पर्व हे. यासों ''में भूखो हुं'' 'तृप्त हुं'' इत्यादिक प्राणधर्मनृकुं अपने मानवे लगे हे. ता पीछें जीवको इन्द्रियन्के साथ सम्बन्ध भयो. इन्द्रियन्कुं अपने स्वरूप मानवे लग्यो. याको नाम 'इन्द्रियाध्यास' हे. ये अविद्याको तीसरो पर्व हे. या करके जीव ''में सुलोचन हुं''—''में काणो हुं'' इत्यादि इन्द्रियन्के धर्मनृकुं भी अपने माने हे. ता पीछे या जीवको देहके साथ सम्बन्ध भयो. तब देहकुं अपने स्वरूप मानवे लग्यो. याको नाम देहाध्यास हे. या करिकें जीव ''में दूबलो हुं''—''में मोटो हुं'' इत्यादि देहके धर्मनृकुं अपने माने हे. ये देहाध्यास अविद्याको चोथो पर्व हे. ये चारों पर्व जब पूरे होय जावे हें तब अन्तःकरण, प्राण, इन्द्रिय, देह इन्कुं जीव हे सो अपनो स्वरूप मानवे लग जावे हे. भगवान्को अंश चेतनरूप जो जीवको अपनो स्वरूप हे ताकुं भूल जावे हे. याहीको नाम 'स्वरूपविस्कृति' हे. ये अविद्याको पांचवो पर्व हे. अविद्याके पांच पर्व जब जीवमें आय जावे हें तब यह जीव अन्तःकरण प्राण इन्द्रिय देह इनके गुणन्सों बंध्यो भयो जन्म—मरणकुं पावे हे. जा देहकुं जीव ''देह हे सो में ही हुं'' एसो माने हे वो ही जीवको जन्म हे. ये जीव अपने चेतनरूपकुं भूलके देहकुं अपनो स्वरूप माने हे. कोई कारण किरकें देहादिकनुकुं भी भूल जावे हे. वाहीकुं मरण कहें हें.

अविद्यां निरूप्य विद्यां निरूपयति विद्यया इति.

विद्ययाऽविद्यानाशेतु जीवो मुक्तो भविष्यति।।३३।। देहेन्द्रियासवः सर्वे निरध्यस्ता भवन्ति हि।। तथापि न प्रलीयन्ते जीवन्मुक्तगताः स्फुटम्।।३४।।

निद्रावद् अविद्यापगमे न जीवस्य जन्म-मरणे. तदा तस्मिन् जन्मनि गृहीतानां देहादीनां विलयाभावम् आह देहेन्द्रियासवः इति. अध्यासएव गच्छति, न स्बरूपं, प्रपञ्चमध्यपातात्. अध्यासाभावे स्थिति: न स्वाद् इति आशङ्क्य आह तथापि न प्रलीयन्ते इति. स्बबुद्ध्या लीनवत् प्रतिभानेऽपि न सर्वेषां बुद्ध्या तथा प्रतिभानम्।।३४।।

अविद्या तथा वाके कार्य को निरूपण करिके अब विद्याको निरूपण करत हैं.

विद्या (ज्ञान) करिके अविद्याको नाश (उपमर्द) होय हे अर्थात् ज्ञानसूं उलटो ज्ञान जो होय रह्यो हे सो दब जाय हे. अविद्याको सर्वथा नाश नहीं होय हे. ये ही ज्ञानिन्को मोक्ष हे. विद्या ज्ञान एक बात हे. जब विद्यासों अविद्या छिप जाय हे तब देहेन्द्रिय-प्राण-अन्तःकरणमें अहङ्कार होय रह्यो हे सो छूट जाय हे अर्थात् ज्ञान भये पीछें देहेन्द्रिय-प्राण-अन्तःकरणकों अपने नहीं माने हें. परन्तु देहादिकको नाश नहीं होय हे. क्योंकि देहादिकन्की तो भगवत्कार्यरूप जगत्में गणना हे. जेसे मनुष्य जागे हे तब गुणरूप मायाके सतोगुणसों प्रकट भई आविद्याकुं दूर कर देवे हे. तब छोटे रूपसों अविद्या अन्तःकरणके भीतर रही आवे हे. जेसें जागतें ही नींद बुद्धिमें जाय छिपे हे, बहुत छोटे रूपसों बुद्धिमें रहे हे, तासों फिर भी वाके समयमें नींद आय जावे हे, एसे ही जीवन्मुक्त ज्ञानी मनुष्यन्को देहादिकन्मेंसे अहङ्कार दूर होय गयो हे तासों देहादिक नहीं मालुम पडे हे परन्तु ओर मनुष्यकुं जीवन्मुक्तके देहादिक दीखे हें. सूक्ष्मरीतिसों छिपो भयो अहङ्कार देहादिकमें कदाचित् फिर पाछो आय जाय तो फिर संसारमें बंधके जन्म-मरणकुं प्राप्त हो जाय याके अर्थ देहादिकको लय होयवेको साधन आगेके श्लोकमें बतावें हे।।३४।।

देहादीनां स्थितौ सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन कदाचित् पुन: अध्यासः स्थाद् अत: तेषां विलयप्रकारम् आह आसन्यस्य इति. आसनस्य हरेर्वापि सेवया देवभावत:।। इन्द्रियाणां तथा स्वस्य ब्रह्मभावाल्लयो भेवेत्।।३५।।

आसन्यसेवायाम् इन्द्रियाणां देवतात्वम् इति श्रुति:. "स ... वाचमेव प्रथमाम् ... अत्यमुच्यते" (बृहदा.उप.१।३।१२) इत्यादि. हरेः सेवया सर्वम् इति भगवच्छास्त्रम्.भगवतो मुखम् अग्निः. स्बस्य वागिन्द्रियम् अग्नि-श्चेद् भगवन्मुखत्वम् आपद्यते. एवं सर्वेषाम् आध्यात्मिकानाम् आधिदैविकत्वं तदा सङ्घातस्य लयः इति अर्थः. स्बस्य जीवभावे स्थिते कदाचित् सङ्घातान्तरं सम्पादयेदिति जीवस्य ब्रह्मभावम् आह स्बस्य ब्रह्मभावाद् इति।।३५।।

श्लोकार्थ : आसन्य अर्थात् प्राणन्की उपासनासुं अथवा भगवान् हरिकी सेवासुं इन्द्रियें जब देवभावकुं प्राप्त करले हे तब देहा-दिकन्को लय होय जाय हे. या ही प्रकार ख्वयंकुं ब्रह्मभावकी उपलब्धि होय जावे पर हु देहादिको लय होय जाय हे.

देहेन्द्रियादिकके लय हायवेके अर्थ आसन्य-प्राणकी उपासना करनी. वेदमें लिख्यो हे वाके अनुसार उपासना करिवेसों इन्द्रिय हे सो अपने देवतारूप हो जाय हें. अर्थात् वाणि अग्निरूप हो जाय हें. प्राण वायुरूप हो जाय हें. नेत्र सूर्यरूप हो जाय हें. कर्ण दिशारूप हो जाय हें. मन चन्द्रमारूप हो जाय हे. जिव्हा वरुणरूप हो जाय हे. नासिका अश्विनीकुमाररूप हो जाय हे. हस्ल इन्द्ररूप हो जाय हें. पांव उपेन्द्ररूप हो जाय हें. या रीतिसों सब इन्द्रिय जब अपने-अपने आधिदैविक देवतारूप होय जाय हें तब मृत्युसों छूट जाय हे. कार्यरूपकुं छोडिके कारणरूप हो जानो ही देहादिकको लय हे.

आसन्यकी उपासनाको प्रकार वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषत्के तृतीय अध्यायके तृतीय ब्राह्मणमें लिख्यो हे. आसन्यकी उपासनाकी वेदमें एसी महिमा लिखी हे ताको कारण ये हे के आसन्य-प्राण हे सो सूत्ररूप हे. सूत्र हे सो महत्तत्वको क्रिया-शिक्त वारो दूसरो रूप हे. महत्तत्व हे सो भगवान्सों प्रकृतिरूपा मायामें उत्पन्न भयो हे. तामें प्रमाण तृतीयरूकंधके २६ अध्या-यमें "दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां रूबस्यां योनौ परः पुमान्, गर्भमाधत्त सासूत महत्तत्वं हिरण्मयम्" श्लोक हे. तासों महत्तत्व भगवान्को पुत्र हे. वासों ही इन्द्रिय-देहादिकन्की उत्पत्ति होय हे. तासों महत्तत्वरूप आसन्यकी उपासनासों देहादिकको लय हो जाय हे. ओर भक्तके देहादिकन्को लय तो हिरकी सेवासों ही हो जाय हे. क्योंके भगवत्शास्त्र गीता-भागवतादिकको ये ही सिद्धान्त हे. भगवत्सेवासों ही सर्व सिद्ध हो जाय हे तामें प्रमाण भागवत एकादशस्क्रन्थको श्लोक "यत्कर्मभिर् यत् तपसा ज्ञान वैराग्य-तश्च यत्, योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिर् इतरैरिप, सर्व मद्धिक्तयोगेन मद्धक्तो लभतेऽञ्जसा, स्वर्गापवर्ग मद्धाम कथञ्चद यदिवा-

ज्छिति" (भाग.पुरा.११।२०।३२-३३) उद्धवजीसों भगवान् आज्ञा करे हें:हे उद्धव कर्म तप ज्ञान वैराग्य आदि साधन करिके जो फल सिद्ध होय हे वो फल मेरे भक्तकुं भिक्त करिके ही मिल जाय हें. स्बर्ग, मोक्ष, मेरोलोक ओर जो कछु चाहे सो सर्व पदार्थ भिक्त करिकें ही मेरे भक्तकुं मिल जाय हे. तासों भगवद्भक्तके देह इन्द्रिय आदिकन्को लय भगवद्भक्ति करिकें हि होय जाय हे.

तात्पर्य ये हे—अग्नि भगवान्को मुख हे. भगवद्भक्तकी वाणी भगवत्सेवासों अग्निरूप हो जाय हे तब भगवान्के मुखरूप हो जाय हे. एसें ही भिक्त किरकें प्राण वायुरूप हो जाय हे तब भगवान्के श्वासरूप हो जाय हे. मन चन्द्रमारूप हो जाय हे तब भगवान्के मनरूप हो जाय हे. याही रीतिसों भिक्ति किरके सब इन्द्रिय आधिदैविक देवतारूप हो जाय हे तब देहकुं छोडके भगवान्के अङ्गरूप हो जाय हे. तब देहादि सङ्घातको भी पश्चमहाभूतन्में लय हो जाय हे.

आसन्य-प्राणकी उपासनासों यद्यपि देहादि सङ्घातको लय हो जाय हे परन्तु आत्माको जीवभाव नहीं जाय हे. सो फेर कदाचित् जीव हे सो देह-इन्द्रियादिककुं धारण करले ओर फिर उनमें अहङ्कार उत्पन्न हो जाय तो फिर बन्ध हो जाय. ओर हिरसेवासों तो देहादि सङ्घातको भी लय हो जाय हे ओर फिर आत्माको जीवभाव दूर होई ब्रह्मभाव होवे हे तब आत्माको ब्रह्ममें लय हो जाय हे. फेरि वाकुं संसारजनित बन्ध कभी नहीं होय हे।।३५।।

ब्रह्मभावप्रकारम् आह आनन्दांश इति.

आनन्दांशप्रकाशाद्धि ब्रह्मभावो भविष्यति।। सायुज्यं वाऽन्यथा तस्मिन् उभयं हरिसेवया।।

तिरोहितस्त्र आविर्भावे ब्रह्मभाव:, तथा जडेऽपि. तत्र भगविदच्छैव केवला प्रयोजिका. अत: तस्त्रा अनियत-त्वात् सायुज्यं वा भवित. अन्यथा सङ्घाते गच्छेत्. सायुज्य-ब्रह्मभावौ हिरसेवयैव भवतो न अन्यसेवया.

जब जीवमें तिरोहित आनन्द प्रकट हो जाय हे तब वो ब्रह्मरूप हो जाय हे. तब वामें ब्रह्मके व्यापकत्वादि धर्म प्रकट हो जाय हें. जेसें अग्निके सम्बन्धसों लोहको गोला भी अग्नि हो जाय हे तेसें व्यापक ब्रह्मरूप आत्माके सम्बन्धसों देहमें छिपे भयो चैतन्य आनन्द प्रकट हो जाय हे तब जड़ देह भी ब्रह्मरूप हो जाय हे. वा अवस्थामें देह-जीव दोनों ब्रह्मरूप रहे हें. या रीतिको ब्रह्मभाव दुर्लभ हे. जा जीवकुं ख्बरूपानन्द देवेके अर्थ ज्ञानीभक्तरूपसों ही सर्वदा स्थित राखनो चाहे हें वा ही जीवकुं एसो ब्रह्मभाव मिले हे. या रीतिको ब्रह्मभाव देवेकी इच्छा नहीं होय ओर सायुज्य मुक्ति देवेकी इच्छा होय तो सायुज्य मुक्ति देवे हे. अर्थात् अलक, कौस्तुभमणि, वनमाला आदिरूप वा भक्तकुं बनायके अपने ख्बरूपमें स्थित करले हे. एसी भी इच्छा नहीं होय तो कोई भक्तकुं अक्षरब्रह्मको सायुज्य दे हे. ओर जा जीवकुं इनमेंसों कुछ भी फल देवेकी भगवान्की इच्छा नहीं होय तो वा जीवके हृदयमें "में मुक्त हुं" एसो अभिमान हो जाय हे तब वो जीव भगवत्सेवाकुं छोड़ देवे हे. तब वाके विषे आनन्द भी प्रकट नहीं होय हे. ओर जेसे बडे परिश्रमसों चढ़्यो भयो फिर गिर पड़े हे तेसे पाछो संसारमें फस जाय हे.

या श्लोकको तात्पर्य ये हे के सायुज्य-ब्रह्मभाव ये दोनों फल भगवान्की इच्छाके ही आधीन हें. ओर हिरसेवासों ही मिले हें, आसन्य-प्राणकी उपासनासों नहीं मिले हें. याको प्रमाण गीताको श्लोक हे "मां च योऽव्यभिचारेण भिक्त योगेन सेवते, स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते" (१४।२६) अर्थ:हे अर्जुन अनन्यभिक्त किरके जो मेरी सेवा करे हे वो जीव सतोगुण रजोगुण तमोगुण को उल्लङ्घन किरके ब्रह्मभावकुं प्राप्त होवे हे.

एवम् एकप्रकारेण सृष्टिम् उक्त्वा उपसंहरति एवं कदाचिद् इति. एवं कदाचिद् भगवान् साक्षात् सर्वं करोत्यज:।।३६।। साक्षात् सर्वोत्पत्तिप्रकारोऽयम्.

श्रुतौ नानाविधा सृष्टिप्रकाराः साक्षात्परंपराभेदेन. तत्र सर्वेषां सङ्ग्रहार्थं सृष्ट्यन्तराणि आह कदाचित् पुरुषद्वारा इति.

> कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनरन्यथा।। कदाचित् सर्वमात्मैव भवतीह जनार्दन:।।३७।।

पुराणे पुरुषद्वारा सृष्टिः प्रसिद्धाः पुरुषादीनां द्वारत्वमेवः अन्यथा चतुर्मूर्तिप्रकारेणः स प्रकारः पश्चरात्रे प्रसिद्धः एवं श्रुति-पुराण-तन्त्रेषु सृष्टिम् उक्त्वा "स आत्मानमेवावैदहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्सर्वमभवद्" (बृहदाः उपः १।४।१०) इत्यादिषु साक्षात्प्रपश्चरूपता निरूपिताः ताम् आहं कदाचिद् इतिः इह इति सृष्टिभेदेषुः जनार्दनः इतिः लीलार्थं जीवानां क्लेशम् असहमानः अस्मिन् पक्षे न आनन्दांशतिरोभावः।।३७।।

सृष्टि उत्पन्न होयवेको एक प्रकार पहिले कह्यो हे यासों याहि रीतिसों सृष्टि होय हे अन्य रीतिसों नहीं होय हे एसे नहीं जाननों. वेदमें सृष्टि प्रकट करिवेके अनेक प्रकार दिखाये हें. जेसे साक्षात्सृष्टि करिवेके अनेक प्रकार हें तेसे ही परम्परासृष्टि करिवेके भी वेदमें अनेक प्रकार हें।।३६।।

कभी भगवान् अक्षर पुरुषके द्वारा सृष्टि करे हें. वो सृष्टि पुराणप्रसिद्ध हे. भागवतके तृतीयस्कन्धमें वा सृष्टिको प्रकार विस्तारसों लिख्यो हे.

कभी आप अपने स्वरूपसों आकाशकुं प्रकट करे हें. आकाशसों वायु प्रकट करे हें. वायुसों अग्नि, अग्निसों जल, जलसों पृथ्वी, पृथ्वीसों अन्न, अन्नसों रस, रससों पुरुष—या रीतिसों उत्पत्ति तैत्तिरीयमें लिखि हे. कोई समयमें अन्य रीतिसों भी सृष्टि करे हें. वासुदेव भगवान् जगत्के कारण हें. तिनसों 'सङ्कर्षण' नामको जीव प्रकट भयो. वासों 'प्रद्युम्न' नामको मन उत्पन्न भयो. वासों 'अनिरूद्ध'रूप अहङ्कार प्रकट भयो. याको विस्तार नारदपञ्चरात्रमें वर्णन कियो हे.

कभी आप अविद्याकुं दूर किरके स्बयं भगवान् जगत्रूप हो जाय हें. "जब ब्रह्मने अपने स्बरूपकों जान्यों के "में ब्रह्म हुं" तब ब्रह्मसों सब सृष्टि प्रकट हो गई". ये प्रकार पुरुषविधब्राह्मणमें लिख्यों हे. ये पुष्टिसृष्टि हे. केवल लीलाके अर्थ करी हे. जब परमदयालु श्रीकृष्ण परमात्मा परब्रह्म जीवन्को अनेकवार जन्म-मरणक्लेश नहीं सह सके हें तब जीवन्कुं सृष्टिमें नहीं प्रकट करे हें. स्बयं भगवान्ही जड-जीव-अन्तर्यामी होयकें क्रीडा करे हें. या सृष्टिमें आनन्दको तथा चैतन्यको कोई पदार्थमें तिरोभाव नहीं रहे हे. सब पदार्थन्में सत्-चित्-आनन्द ये तीनों प्रकट रहे हें।।३७।।

स्बप्नादिसृष्टिसङ्ग्रहार्थम् आह महेन्द्रजालवत्सर्वम् इति.

महेन्द्रजालवत्सर्वं कदाचिन् माययासृजत्।। तदा ज्ञानादयः सर्वे वार्तामात्रं न वस्तुतः।।३८।।

मायया केवलया नतु स्त्रयं तत्र प्रविष्टः. तत्सृष्टौ न कोऽपि पुरुषार्थइति आह तदा ज्ञानादय: इति. सन्ति ज्ञाना-दयः, परं वार्तामात्रं, नतु फलसाधकाः।।३८।। कभी भगवान् केवल मायासोंही सृष्टि करवावें हें, आप स्बयं वा सृष्टिमें प्रवेश नहीं करें हें. वो मायिक सृष्टि बहुत प्रकारकी हे. सोते भये पुरुषकों ज्यों नींदमें हाथी-घोडा, बडे-बडे नगर आदि अनेक पदार्थ दीखे हें वे मायाकेही बने भये होवे हें. तथा काच आदि पदार्थमें प्रतिबिम्ब दीखे हे अर्थात् काचके सामनें कोइ चीजकुं करी जाय हे तो काचमें वेसीकी वेसी दूसरी चीज बन जाय हे

वा दूसरी चीजकुं मायाकी बनी माननो. एसें ही भगवान्के स्वरूप जो घट-पटादिक सब जगत्के पदार्थ हें उनमें भगवान्सों त्यारोपनो, मिथ्यापनो, निन्दितपनो तथा ग्लानि आदि भासमान होय हे सो भी मायाके बनाये भये हें. जेसें सपेत भी कपड़ा हरे चसमासों हरो दीखे हे एसें ही मायाकी बनाई अन्तरासृष्टि, अर्थात् विषयतारूपा सृष्टि, नेत्र आदि इन्द्रियन्के तथा जगत्के पदा-र्थन्के बीचमें आय खड़ी होय हे तब मायासृष्टिसों मिले भये पदार्थन्को ही ग्रहण होय हे, शुद्ध भगवद्रूप पदार्थन्को ग्रहण नहीं होवे हे. जेसे हरो चसमा बीचमें होय तब नेत्र शुद्ध सपेत वस्त्रकुं नहीं देख सके हे किन्तु चसमाको हरोपनो वामें दीखे हे याही रीतिसों मायाकी अन्तरासृष्टि बीचमें आय रही हे तासों वा अन्तरासृष्टिको मिथ्यापनो तथा निन्दितपनो भगवद्रूप जगत्में भी भासमान होवे हे. या मायासृष्टिको वर्णन भागवतके एकादशास्कन्धमें ''मायान्तराऽऽपतित नाद्यपवर्गयोर्थत्'' (भाग.पुरा.१११९।७) या श्लोकमें तथा ''न तं विदाथ यइमा जनानाऽन्यद्युमाकमन्तरं भवति'' या यजुर्वेदके मन्त्रमें कियो हे. ऐसेंही अन्धकार, प्रतिध्विन, झाईंकी अवाज, आकाशमें बादलके काले-पीले-लाल रङ्ग, जेबडा आदिमें सांप तथा आभास-प्रतिबिम्ब-विषयता आदि पदार्थन्की प्रतीति इत्यादि अनेकमायासृष्टिके भेद हें. या सृष्टिमें ज्ञानादि वार्तामात्रके हें, फलसाधक नहीं हें. जेसे सपनेके लाडु कहवे मात्रके होय हें, उनसों तृप्ति नहीं होय हे. एसे ही मायिक सृष्टि भी मिथ्या हे. या मिथ्यास्-ष्टिके वर्णन किरवे वारे वाक्यन्को तात्पर्य नहीं समुझके कितनेक वादी ब्रह्मरूप जगतुकुं हु मायिक तथा मिथ्या बतावें हें।।३८।।

वैदिकीम् अपरामपि सृष्टिम् आह वियदादि इति.

वियदादि जगत् सृष्ट्वा तदाविश्य द्विरूपतः।। जीवान्तर्यामिभेदेन क्रीडति स्म हरिः क्वचित्।।३९।।

आकाशं सृष्ट्वा तद्द्वारा वायुम् इत्यादि. अस्मिन्नपि पक्षे जडानां पूर्ववदेव व्यवस्था. जीवान्तर्यामिभेदे भिन्नं प्रकारम् आह तदाविश्य इति. पूर्वकल्पेषु जीवान्तर्यामिणोः अप्रवेशः. अस्मिन् कल्पे प्रविष्टस्य जीवान्तर्यामिभावः इति. एवं षड्भेदान् उक्त्वा षड्गुणैः भगवतो लीला इयम् इति आह क्रीडितिस्म इति।।३९।।

एकः कथम् अनेकधा सृष्टिं करोति ? इति आशङ्क्य आह अचिन्त्यानन्तशक्ते: इति.

अचिन्त्यानन्तशक्तेस्त्तद् यदेतद् उपपद्यते।। अतएव श्रुतौ भेदाः सृष्टेरुक्ता ह्यनेकधा।।४०।।

अचिन्त्याः अनन्ताः शक्तयो यस्य इति. यदेतत् सर्वम् उक्तं तद् उपपद्यते. अस्मिन् अर्थे श्रुतेः तात्पर्यम् आह अतएव इति. श्रुतौ नानाप्रकरणेषु सृष्टिभेदाः सहस्रशो निरूपिताः।।४०।।

अनेकधासृष्टिकथनस्य प्रयोजनम् आह यथाकथञ्चिद इति.

यथाकथित्रन्माहात्म्यं तस्य सर्वत्र वर्ण्यते।।

दूसरी वैदिक सृष्टिको निरूपण करत हें

कभी भगवान् साक्षात् अपने स्बरूपसों आकाश उत्पन्न करें हे. आकाशसों वायु उत्पन्न करे हें. पहिले जो क्रम कह्यो हे वाके अनुसार ही सृष्टि उत्पन्न करे हें. वा सृष्टिमें तथा या सृष्टिमें इतनोही तारतम्य हे के वामें भगवान्ने जीव तथा अन्तर्या – मीरूप पहिले धारण करिके फिर अपने बनाये जगत्में प्रवेश कियो हे तथा यामें पहिले बिराजमान होयके पीछे जीव – अन्तर्यामीरूप धारण करे हें.

ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये भगवान्के छे गुण हें इन छे गुणन् किरके भगवान् छे प्रकारकी सृष्टिक्रीडा करे हें. तासों मुख्य छे प्रकारकी सृष्टि हे. इनमेंसों, परन्तु, एक-एक सृष्टिके अनेक भेद हें. यासों अनेक भेद सृष्टिके वेदमें वर्णन किये हें।।४०।।

भजनस्यैव सिध्यर्थ तत्वमस्यादिकं तथा।।४१।।

वेदानां भगवन्माहात्म्यप्रतिपादकत्वं "बन्दिनस्त्तत्पराक्रमै:" (भाग.पुरा. १०।८७।१३) इति वाक्यात्. तत् सृष्टिभेदकथनेन भवतीति सृष्टिभेदा निरूप्यन्ते. वस्तुतस्तु सृष्टिकर्तृत्वेपि न भगवतो माहात्म्यं, महाराजाधिराजस्य चिलतुं ज्ञानिमव. तथापि लोकप्रतीतौ तन्माहात्म्यं भवतीति यथाकथि द्विव वर्ण्यते. माहात्म्यज्ञानस्य उपयोगम् आह भजनस्यैव सिध्यर्थम् इति. भक्तिसिध्यर्थम्. भक्ते: अंशद्वयमिति द्वितीयांशमिप प्रतिपादयतीति तथा लक्ष्यते इति अर्थः. द्वितीयां शम् आह तत्वमस्यादिकं तथा कथयति।।४१।।

वेदमें अनेक प्रकारकी सृष्टिको वर्णन कहा प्रयोजनसुं भयो हे सो कहत हें

भगवान्को माहात्म्य जतायवेके अर्थ सर्व ठिकाणे वेदमें अनेक प्रकारकी सृष्टि लिखी हे. जेसे बन्दीजन पराक्रम वर्णन किरके राजाकी स्त्रुति करे हें एसे वेद भी नाना प्रकारकी सृष्टिको वर्णन किरके भगवान्को माहात्म्य जतावे हें. वस्त्रुतस्तु ठीक ठीक बिचार कियो जाय तो भगवान् अपनो माहात्म्य जतायवेके अर्थ सृष्टि नहीं करे हें क्योंके सृष्टि करनो भगवान्को सहज स्बभाव हे. जेसे राजाधिराज सहज स्बभावसों ही सुन्दर चाल जाने हें, वामें उनको कछु माहात्म्य नहीं हे परन्तु प्रजाके हृदययमें तो राजाकी सुन्दर गित देखिके माहात्म्य स्बतःही बढे हे. एसे ही विना पिरश्रम, इच्छामात्रसों, क्षणभरमें क्रोडन ब्रह्माण्डकी सृष्टि भगवान् कर देवे हें परन्तु जीव तो क्रोड जन्ममें भी सृष्टि नहीं कर सके हे. तासों मनुष्यकी अपेक्षा सृष्टि करनो भगवान्को माहात्म्य हे. याहीसों वेदने अपनी सामर्थ्यके अनुसार जैसे–तैसे सृष्टिको वर्णन किरकें जीवन्कुं भगवान्को माहात्म्य जतायो हे.

तात्पर्य ये हे के वेदमें भी भक्तिको ही वर्णन हे. ओर माहात्मय जानके रूबेह करवेसों भक्ति कहे हें. तहां भगवान्को माहात्म्य जतायवेके अर्थ वेदमें सृष्टिको वर्णन हे तथा भगवान्कुं अपनी आत्मा समझके रूबेह करवेके अर्थ वेदके "तत्वमिस" इत्यादि वाक्यन्में "हे जीव तु ब्रह्म हे" एसो उपदेश कीनो हे. तात्पर्य ये हे के आत्माके उपकार करिवे वारे जानिके स्त्री-पुत्र-देह आदिमें मनुष्य प्रीति करे हे. स्त्री-पुत्रादिमें रूबार्थकी प्रीति हे तासों सोपाधि-सकाम प्रीति हे. तथा अपनी आत्मामें जो प्रीति हे सो निःस्बार्थ प्रीति हे, ये निष्काम-निरुपाधि प्रीति कही जाय हे. भगवान् सब देहधारीन्के आत्मा हें ये बात "तत्वमिस" आदि वेदके वाक्यन्सों सिद्ध होय हे. तथा श्रीभागवतमें भी लिख्यो हे "अहमात्मोद्धवामीषाम्" (११।१६।९). हे उद्धव में सब दहेधारीन्को आत्मा हुं. तासों भगवान्कुं ही अपने आत्मा समुझके भगवान्में निष्काम दृढ प्रीति करनी ये ही वेदको निचोड़ हे।।४१।।

भक्तिस्बरूपम् आह माहात्म्य इति.

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।। स्त्रेहो भक्तिरिति प्रोक्तस् तया मुक्तिर्नचान्यथा।।४२।।

भक्तिस्बरूपम् आह माहात्म्य इति. स्त्रोहो भक्तिः. ''रितर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते''. रित: स्त्रोहो, देवत्वं माहात्म्यम्. तद् आत्मत्वेन ज्ञाते भवति. तेन भजनार्थमेव आत्मत्वेन तिन्नरूपणं माहात्म्यं च उच्यते. अन्यथा वाक्यद्वयं ब्रह्मप्रकरणे व्यर्थं स्थात्, ब्रह्मस्बरूपज्ञानेनैव पुरुषार्थसिद्धेः तच्छाब्दज्ञानम् अप्रयोजकम्, इदानीन्तनेषु व्यभि-

चारदर्शनात्. साक्षात्कारस्तु ब्रह्माधीनः. प्रसन्नं सत् तद् आविर्भवतीति लोकरीत्यावगम्यते. श्रुतिश्च पुरुषार्थपर्यवसानं कथयति. अतः स्ब्बरूपज्ञानं विधाय तस्य पुरुषार्थत्वम् उक्त्वा तदाविर्भावएव फलं सिध्यतीति आविर्भावार्थं प्रेमसेवां निरूपयति. अवज्ञानादिदोषाभावाय माहात्मयं सुदृढस्त्रेहात्मत्वं च आह. "तत्वमिस" इति अत्र शास्त्रपर्यवसानम् अग्रे निराकरिष्यते.

एवं कियतीनां श्रुतीनाम् एकवाक्यताम् उक्त्वा सर्वासाम् एकवाक्यतांवक्तुं

जीवकी मुक्ति भिक्त करवेंसोंही होवे हे. भगवान्को माहात्मय जानके सबसों अधिक दृढरूबेह करनो भिक्ति कहावे हे. वाहीको नाम भाव हे. "रितर्देवादिविषया भाव इत्यिभिधीयते" अर्थ:माहात्म्यके द्वारा ये देवता हे एसो जानके जो प्रेम कर्यो जाय वासों भाव कहे हे. केवल या प्रकारके भावसोंही गोपी, गाय, पक्षी, मृग आदिकन्को भगवान्की प्राप्ति भई हे. निरुपा-धिक रूबेह भगवान्कुं आत्मा समुझें बिना नहीं होय हे. तासों वेदमें ब्रह्मकुं अर्थात् भगवान्कुं आत्मा मानके प्रेम करायवेके अर्थ "तत्वमिस" इत्यादि श्रुतिन्में "वो ब्रह्म तूं हे" या रीतिको उपदेश कियो हे. तहां कितनेक वादी कहे हें के ब्रह्मज्ञान विना मुक्ति नहीं होय हे तासों ब्रह्मज्ञान होयवेके अर्थ "तत्वमिस" इत्यादि वाक्यन्में "जीव तु ब्रह्म हे" एसो उपदेश दियो हे. ताको ये उत्तर हे :

केवल उपदेश मात्रसोंही ब्रह्मको ज्ञान हो जातो होतो तो "तत्वमिस" अथवा "जीवो ब्रह्मैव" अर्थ:जीव हे सो ब्रह्मही हे एसो एकही वाक्य सब उपनिषदन्में होनो चिहये याही वाक्यके उपदेशसों ब्रह्मको ज्ञान हो जायगो फेर ब्रह्मसों सृष्टिकी उत्पत्तिको क्यों वर्णन कियो? वादीकी रीतिसों सृष्टिको वर्णन वृथा होय हे. ओर दूसरो वा प्रश्नको ये उत्तर हे के "तु ब्रह्म हे" एसें शदूमात्रके किहवेसों ब्रह्मके ख्वरूपको ज्ञान नहीं होय हे. क्योंके अभीके मनुष्यन्में कोइकुं भी उपदेशके सुनते ही ब्रह्मको साक्षात्कार नहीं होय हे तासों ब्रह्मको ज्ञान होनो ब्रह्मके ही आधीन हे. कठवछीमें "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" अर्थ:जाकु ब्रह्म अपने ख्वरूपको ज्ञान करानो चाहे हे वाकु ही ब्रह्मको ज्ञान हावे हे— या श्रुतिमें ये बात लिखी हे. ओर जेसे लोकमें राजा प्रसन्न होय तब दर्शन दे हे एसें ही भगवान् (ब्रह्म) जा जीवपे प्रसन्न होय वाहीके आगें अपने ख्वरूपकुं प्रकट करे हे. "तमक्रतुं पश्यित वीतशोको धातुः प्रसादान् महिमानमीशम्" या श्रुतिमें भगवान्की प्रसन्नताहीसों भगवान्कुं जीव देखे हे ये बात खुलासासों लिखी हे. ओर भगवान् प्रसन्न होंय एसो साधन (प्रेमसेवा) भिक्त ही हे. यासों वेदमें भी भिक्तिकोही निरूपण हे. ओर ब्रह्ममें अवज्ञा आदि दोषकुं दूर किरवेके अर्थ माहात्म्य वर्णन कियो हे. तथा सुदृढ ख्नेह होयवेके अर्थ आत्म तत्वको वर्णन हे।।४२।।

या प्रकार कितनीक श्रुतिन्को भक्तिमें तात्पर्य दिखायकें, उपासनाके योग्य स्बरूपको जिन श्रुतिन्में वर्णन हे उन श्रुतिन्को भी भक्तिमें

भगवतो रूपाणां सङ्ग्रहश्लोकौ आह पञ्चात्मक: इति.

पञ्चात्मकः स भगवान् द्विषडात्मकोऽभूत्
पञ्चद्वयीशतसहस्रपरामितश्च ।।
एकः समोऽप्यखिलदोषसमुज्झितोऽपि
सर्वत्र पूर्णगुणकोऽपि बहूपमोऽभूत्।।४३।।

अग्निहोत्रादिपश्चात्मकः, तत्साधनदेशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रात्मकः, त्रिविधमन्त्र-ब्राह्मणोपनिषदात्मकः, पश्चप्रा-णभूताद्यात्मकश्च. तेन एतावन् निरूपिकाणां श्रुतीनाम् एकवाक्यता सिध्यति. अग्रेऽपि तथा. देहे च पश्चात्मकः. ध्यानार्थं प्रादेशमात्रः. आश्रयार्थम् अङ्गुष्ठमात्रः. स्बामित्वार्थम् अक्षिस्थितः. फलार्थं सर्वदेहस्थितः आनन्दमयः. वैश्वानरः शिरसि प्रतिष्ठितः सर्वार्थः इति. तथा पश्चकोशात्मकश्च उपासनार्थः. तावतापि सर्वासां न एकवाक्यता इति अभिप्रेत्य आह द्विषडात्मकोभूद् इति. द्वादशसूर्यात्मको, मासात्मकः, पुरुषात्मकः, अहीनात्मकः, अम्यात्मकश्चेति. अन्येऽपि द्वादशधा भिन्ना ज्ञातव्याः.

ततोऽपि प्रकारान्तम् आह पश्चद्वयी इति. दिगात्मको, देवात्मक:, इन्द्रियात्मको, लीलात्मक:, तथा अन्येपि ये दशात्मकाः स्वयम् ऊह्या अवतारादय:.

ततोऽपि अपूर्तिरिति अधिकम् आह शतसहस्रपरामितश्च इति. चत्वारो भेदा उत्तरोत्तरम् अधिका: अमिता: असङ्खचाता: विभूतिरूपाः सर्वे ज्ञातव्याः. एवं भगवतः सप्तधा रूपभेदा: उक्ताः. तेषु भगवान् भिन्नः इति आश- ङ्क्य आह एक इति. सर्वेषु रूपेषु एकएव, योगिवत्. प्रादेशाङ्गुष्ठादिमात्रेषु न्यूनाधिकभावम् आशङ्क्य आह समोऽपि इति. कचिद् अन्यथा प्रतीतिम् आशङ्क्य आह अखिलदोषसमुज्झितोऽपि इति. ऐश्वर्यादिगुणाः सर्वेषु रूपेषु पूर्णाः. तथा सित कथं वैलक्षण्यप्रतीतिः? तत्र आह बहुपमोऽभूद् इति. नरवत्, प्रादेशवत्, शान्तवत्, क्रूरवद् इति।।४३।।

तात्पर्य दिखायवेके अर्थ भगवान्के विभूतिरूपन्को वर्णन करे हें.

श्लोकार्थ : एक, सम, अखिल दोषन्सुं रहित तथा सर्वत्र पूर्णगुण वारे होते भये हु भगवान् पञ्चात्मक, द्वादशात्मक, दशा-त्मक, शतात्मक, सहस्रात्मक तथा परात्मक असङ्खच रूप वारे तथा बहूपम होय गये.

अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास, सोमयाग ये पांच भगवानुको ख्बरूप हे. तथा यज्ञके साधन : देश, काल, मन्त्र तथा कर्ता ये पांच भगवान्को ख्बरूप हें, तथा ऋग्वेदके मन्त्र, यजुर्वेदके मन्त्र, सामवेदके मन्त्र, ब्राह्मणभाग तथा उपनिषद्भाग ये पांच भी भगवानुको स्बरूप हें. तथा प्राण, अपना, समान, उदान, व्यान ये पांच वायु भी भगवानुको स्बरूप हें. तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये पांच भूत तथा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द ये पांच तन्मात्रा ह भगवान्को ही रूप हे. तथा देहमें भगवान्के पांच स्बरूप विराजे हें. ध्यान करिवेके अर्थ १प्रादेशमात्र-बारहअङ्गलीको स्बरूप हृदयमें बिराजे हे. या स्बरू-पको भागवतके द्वितीयस्कन्धमें वर्णन हे. आश्रयके अर्थ २अङ्गष्टमात्र स्वरूपसों बिराजे हें. या स्वरूपको काठकोपनिषद्में वर्णन हे. ३कर्मफलको नियम करवेके अर्थ या जीवको ख्वामी होयके नेत्रन्में विराजे हें. या ख्वरूपको छान्दोग्य उपनिषद्में वर्णन हे. ओर सुख देवेके अर्थ आखे देहमें ४आनन्दमय भगवान् विराजें हे. मस्तकमें भूकुटि-नासिकाकी सन्धिमें ५वैश्वानर भगवान् बिराजे हें. या ख्बरूपको वर्णन छान्दोग्य तथा जाबाल श्रुतिमें हे. या रीतिसों देहमें पश्चात्मक भगवान् बिराजें हें. तथा द्वादश सूर्यात्मक भगवान् हें. एसे ही बारह महिना भगवान्को ही रूप हें. तथा बारह अग्नि भी भगवान्को ख्बरूप हे. दश दिशा तथा दश लीला प्रभुको स्बरूप हे. तथा शतसहस्र अरु पर अमित असङ्खचात भगवान्के विभूति स्बरूप हें. इन रूपन्में भगवान् न्यारे-न्यारे नहीं हें किन्तु एकही भगवान इन अनेक रूपनुमें विराजे हें. जेसे एकही योगी अनेक शरीरनुमें योगके प्रभावसों धसो रहत हे ऐसें एकही भगवान् अनेक रूपमें न्यारे-न्यारे प्रतीत होय हें. अलौकिक सामर्थ्यसों आप अपने ख्बरूपन्में अभेद राखे हें. ओर आपके छोटे अंगूठा जितने स्बरूपमें न्यूनता नहीं समझनी तथा बारह अङ्गलके स्बरूपमें अधिकता नहीं समझनी. छोटे-बड़े सब रूपमें भगवान् समान ही हें. ओर जितनें आपके रूप हें सब दोष रहित हें. ओर सबही रूपन्में ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये छे गुण पूरे विराजमान हें.

आपके रूपमें जो परस्पर विलक्षणता मालुम पडे हे सो आप क्रीडाके अर्थ सबसों जुदे हो जाय हें. आप विलक्षण हो जाय हें ओर अविलक्षण भी रहे आवे हें. अनेक रूप होयकें सामिल भी रहे आवे हें. वेदमें भी लिखे हें "समो नागेन समो मशकेन" अर्थ:आप अद्भुत सामर्थ्यसों हाथीके समान भी हें ओर मच्छरके समान भी हें". तीन लोकके भी समान हें तासों आप बहुपम हें अर्थात् भगवान्में सब उपमा दे सके हें।।४३।।

एवं विभूतिम् उपपाद्य स्वरूपम् उपपादयति निर्दोर्ष इति.

निर्दोषपूर्णगुणविग्रह आत्मतन्त्रो निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः ।। आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा ।।४४।।

यादृशं मूलरूपं तादृशमेव सर्वम् इति मन्तव्यं. गुणाः शान्ति-ज्ञानादयः. ते लोके दोषसिहता दृष्टा महतोपि. यथा ज्ञानं क्रचित् तत् न सङ्गवर्जितम्इति. तथा तपः क्रोधसिहतम्. तथा धर्मो दयारिहतः. तथा न भगवित िकन्तु निर्दोषाः पूर्णाः गुणाः विग्रहरूपाः यस्य. 'विग्रह'पदेन परस्प्ररिवरुद्धाअपि लोकदृष्टया भासन्ते इति ज्ञातव्यम्. गुणाधी- नत्वम् आशङ्क्य आह आत्मतन्त्र इति. देहेन्द्रियादीनां कार्यप्रतीतेः लोकवद् देहेन्द्रियाणि भविष्यन्ति इति आशङ्क्य आह निश्चेतनात्मक इति. चकारात् तत्तद्धमैरिप हीनः. तिर्हे कथम् आकारप्रतीतिः? तत्र आह आनन्दमात्रकरपादमुखो- दरादिः इति. आनन्दो ब्रह्मवादे आकारसमर्पकः. अतएव पुरुषेष्विप सर्वान्तर आनन्दमयो निरूपितः. तद्वस्तु सर्वात्मकम् इति वदन् आह सर्वत्र च त्रिविधभेदिववर्जितात्मा इति. जीव-जडान्तर्यामिषु सर्वत्रैव तदनुस्यूतं, कारणत्वाद् इति तस्य कारणता च निरूपिता।।४४।।

या प्रकार ब्रह्मकी विभूतिन्को उपपादन करिके अब ब्रह्मके मूलरूपको वर्णन करें हे.

श्लोकार्थ : निर्दोष तथा पूर्ण एसे जो गुण सो भगवान्के विग्रह स्बरूप हें. भगवान् स्बतन्त्र हें तथा जड़ शरीर एवं वाके गुण-धर्मन्सुं रहित हें. आपके श्रीहस्त, चरण, श्रीमुख, उदर आदि अङ्ग आनन्दमय अथवा आनन्दस्बरूप हें. आप सर्वत्र जड़, जीव तथा अन्तर्यामी के त्रिविध भेदन्सों रहित हें तथा उन तीनोंन्के कारणरूपमें उनमें अनुस्यूतहें.

जेसो मूलरूप हे वेसोही ध्यान करनो. लोकमें जितने गुण हें वितने सब दोषन्के भरे हें. जे ज्ञानी हें वे सङ्गरहित नहीं हें. जो तपख्बी हे वो क्रोध वारो हे, जो धर्मात्मा हे वो दया वारो नहीं हे. या रितिसों लोकमें सब गुण-दोषसहित हें. मूलरूप पुरुषो-त्तममें शान्ति, ज्ञान, दया, शरणागतरक्षा, भक्तवत्सलता आदि अनेक गुण दोषरहित हें. ओर जितनें गुण हें वे सब पूरे हें. लौकिक दृष्टिसों विन गुणन्में परस्पर विरोध दीखे हे. परन्तु वे सब एकरूप हो रहे हे. आप स्बतन्त्र हें. अपने गुणके आधीन नहीं हें. देह-इन्द्रिय आदिकन्के कार्य आप करते प्रतीत होवे हें परन्तु लौकिक देह-इन्द्रियादिक तथा उनके धर्म आपमें नहीं हे. आनन्दके बने भये आपके श्रीहस्त, श्रीचरणारविंद आदि सब अङ्ग हें.

भेद तीन प्रकारके होवे हें. १.मनुष्य तथा पशुमें परस्पर भेद हे सो विजातीय भेद हे. २.मनुष्यन्में जो परस्पर भेद हे सो सजा-तीय भेद हे. ३.मनुष्यके अङ्गन्में जो परस्पर भेद हे सो स्वगतभेद हे. ये तीनों भेद भगवान्के स्वरूपमें नहीं हे. आपको आन-न्दमयरूप जड़-जीव-अन्तर्यामीमें भर रह्यो हे. याहीसों भगवान् सर्वात्मक हें, सबके कारण हें।।४४।।

एतन् निरूपणस्य प्रयोजनम् आह तस्य ज्ञानद्धि कैवल्यम् इति. तस्य ज्ञानद्धि कैवल्यम् अविद्याविनिवृत्तितः।। गुणोपसंहारन्यायेन श्लोकद्वयोक्तधर्मसंयुक्तं ब्रह्म चेद् विजानीयात् तदा ब्रह्मविद्भवति. ततः कैवल्यं सङ्घातात् पृथग्भावं, मोक्षं वा प्राप्नोति. तत्र दृष्टं द्वारम् आह अविद्याविनिवृत्तितः इति. पूर्वोक्तं ज्ञानम् अविद्यां निवर्तयन् मोक्षं साधयति इति अर्थः. तज्ज्ञानम् अपरोक्षरूपम् इति.

विद्यायाः पश्चपर्वाणि, तत्साधनानि आह वैराग्यम् इति.

वैराग्यं साङ्खच-योगौ च तपो भक्तिश्च केशवे।।४५।। पञ्चपर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत्।।

आदौ विषयवैतृष्ण्यम्. ततो नित्यानित्यवस्त्तुविवेकपूर्वकः सर्वपरित्यागः. ततः एकान्ते अष्टाङ्गो योगः. ततो विचारपूर्वकम् आलोचनं तपः, एकाग्रतया स्थितिः वा. ततो निरन्तरभावनया परमं प्रेम।।४५।।

तात्पर्य ये हे के ब्रह्म निष्कल हे, निरञ्जन हे, इतनेसें जानवेसों पूरो ब्रह्मज्ञानी नहीं होय हे. ब्रह्मके थोड़े स्वरूपकों वो जाने हे इतने जानवेसों वेदोक्तफल नहीं होय हे किन्तु उपरके दोनों श्लोकन्में लिखे भये वेदोक्त सब गुण सहित ब्रह्मकुं जब मनुष्य जान जाय हे तब पूरो ब्रह्मज्ञानी होवे हे. तबही जीवको कैवल्य अर्थात् मोक्ष होवे हे. अर्थात् भगवान् परम स्व्वतन्त्र हें. इच्छा होय तो देहादिक सङ्घातसों वा जीवको न्यारो कर दे हे, इच्छा होय तो देहादिकसों न्यारो किरके जीवको मोक्ष अर्थात् ब्रह्मभाव किरके लय कर दे हे. या रीतिसों सब गुण सिहत ब्रह्मको साक्षात् अनुभव हे सो अविद्याकुं दूर किरके मोक्ष करे हे. परन्तु जहां तांई विद्याके पांच पर्व नहीं सिद्ध होवे हें तहां तांई ब्रह्मको साक्षात् अनुभव नहीं होवे हे. तासों पांच पर्वको वर्णन करे हें. विद्याको पिहलो पर्व वैराग्य हे. इन्द्रियन्के विषयसुखमें तृष्णा नहीं राखनी ये ही वैराग्य हे. नित्य-अनित्यपदार्थको विचार किरके सबन्कुं छोड़ देनो याको नाम साङ्ख्य हे, ये विद्याको दूसरो पर्व हे. अष्टाङ्गयोग विद्याको तीसरो पर्व हे. विद्याको चतुर्थ पर्व तप हे. विचारपूर्वक ज्ञानसों अथवा चित्तको एक ठिकाने लगायकें स्थित रहिवेंकों 'तप' कहे हें. विद्याको पांचवो पर्व भिक्त हे. निरन्तर भावना किरके भगवान्में परम प्रेम करनो ये हि भिक्त हे।।४५।।

एवं साधनसम्पत्तौ पञ्चपर्वा विद्या सम्पद्यते, यया कृत्वा जातसाक्षात्कारः तं प्रविशेद् इति आह यया विद्वान् हिरं विशेद् इति.

अत्र स्वरूपयोग्यतारूपम् अधिकारम् आह सत्व इति.

सत्वसृष्टिप्रवृत्तानां दैवानां मुक्ति योग्यता।।४६।।

ये सात्विका: दैव्यां सम्पिद जाता विध्युपजीविनः सर्वदा तेषां मुक्ति: भविष्यति न अन्येषाम् इति ज्ञापि-तम्।।४६।।

या पाञ्चपर्वा विद्या करके भगवान्को साक्षात् अनुभव होवे हे तब भगवान्में प्रवेश होवे हे.

पञ्चपर्वा अविद्यासों प्राप्त होयवे वारी उपयुक्त मुक्ति भी सबन्कुं प्राप्त नहीं होवे हे ये जतायवेकुं तथा अधिकारीको निरूपण करिवे वारी श्रुतिन्की एकवाक्यताको प्रतिपादन करिवेके अर्थ विद्या अथवा वासुं प्राप्य मुक्तिके अधिकारीकी ख्बरूपयोग्यताको निरूपण करेहें.

अविद्याके पांच पर्वन्में जो भिक्तिको वर्णन हे वो भिक्ति स्बतन्त्र निष्काम भिक्ति नहीं हे किन्तु सकाम प्रावाहिकी भिक्ति हे. मोक्षकी कामनाके अर्थ करी जावे हे, मोक्ष देकें निवृत्त हो जावे हे. विद्याके पांच पर्वन्में भिक्तिको वर्णन कियो हे ताको ये प्रयोजन हे के भिक्ति सिहत ज्ञानही निर्गुणमोक्षकों देवे हे. केवलज्ञानसों तो सगुणमुक्ति ही होवे हे. या रीतिसों साधन करिवेसों भी दैवी सम्पत्में उत्पन्न भये सात्विक जीवन्की ही मुक्ति होवे हे. जे आसुरजीव हें उनकी मुक्ति नहीं हे. जेसें जा जमीनमें बीज नहीं होय वामें जल डारवेसों भी कुछ नहीं होवे हे. दूसरो दृष्टान्त ये हे के जेसे तेलयन्त्र–घाणी हे सो तिलन्मेंसों ही तेल निकास सके हे, वालु-रेतमेंसो तेल निकसवेकी योग्यता नहीं हे. एसेही भगवान् सृष्टिकी आदिमें ही जिन जीवन्में भिक्तिको अङ्कर धर देवे हें वे ही दैवी जीव हें. उनकी ही भिक्ति साधन करवेसों बढ जावे हे तब भगवत्प्राप्ति कराय दे हे।।४६।।

अनेनैव प्रकारेण मुक्ति: न अन्यथा इति वक्तुं देशादिषट्के तदङ्गे मुक्ति: भाक्ता इति आह तीर्थादाविप इति द्वाभ्याम्. तीर्थादाविप या मुक्तिः कदाचित्कस्यचिद्भवेत्।। कृष्णप्रसादयुक्तस्य नान्यस्येति विनिश्चयः।।४७।।

काश्यादितीर्थेषु मुक्तिः प्रसिद्धाः तत्र अन्ते ''तारकं ब्रह्म व्याचष्टे'' त्यादिवाक्यैः शुद्धानां ब्रह्मोपदेशइति अलौकिकोपदेशसाधकत्वं न व्यभिचरितः तद् आहं कदाचित्कस्यचिद्भवेद् इतिः सर्वेषामेव उपदेशोऽस्तु इति चेत् न, इति आहं कृष्णप्रसादयुक्तस्य इतिः प्रसन्नो भगवांस्त्रद्धारा मोचयित, तीर्थादीनां माहात्म्यार्थं, यथा अजामिलो नाम्नाः अतः प्रसादार्थं प्रेमान्तानि कर्तव्यानिः ननु कदाचित् प्रेमरिहतोऽपि तीर्थे सम्यक्प्रकारेण मुक्तिसूचकेन म्रियते, इति चेत्, तत्र आहं नान्यस्य इतिः तस्यापि पूर्वमेव साधनसम्पत्तिः सिद्धा वासनावशात् परं प्राकृतत्वं भगविद्रच्छयाः तस्यात् न व्यभिचारः इति अर्थः।।४७।।

मुक्तिकी प्राप्तिको प्रकार ये ही हे. अन्य कोई प्रकारसों मुक्ति नहीं मिले हे ये बतायवेके अर्थ भगवान्के देशादि छे अङ्गन्में होयवे वारी मुक्ति गौण हे ये आगेके दो श्लोकन्सुं कहे हें.

श्लोकार्थ : कबहु भगविदच्छा होयवे पर कोई भगवद्भक्त जीवकों तीर्थादिमें रहिवे-मिरवेसों हु जो मुक्ति प्राप्त होय जाय हे वो वाहीकुं होय हे जाके उपर श्रीकृष्ण प्रसन्न होवे हें, अन्यकु नहीं, ये बात निश्चित हे.

ज्ञानमार्गमें भी भक्ति करके ही जीवकी निर्गुणमुक्ति होवे हे, केवल ज्ञानसों तो सगुणमुक्ति होवे हे ये दिखायवेके अर्थ ज्ञानमार्गको उपरके श्लोकन्में वर्णन कियो हे. एसे ही काशि आदि तीर्थ भी भगवान् अङ्ग हें तासों मुक्ति देवे वारे कहे हें. परन्तु भगवान्की भक्ति विना मुक्त नहीं कर सके हें. तीर्थमें रहिवे वारे जीवमात्रकी भक्तिके विना ही यदि मुक्ति हो जाती होय तो तीर्थन्में भूत-प्रेत क्यों दीखें हें? तथा यदि काशीजीमें मिरवेसों सबकी मुक्ति होती होय तो काशीमाहात्म्यमें लिख्यो हे ''काशीके पापी जीवन्कों मरे पीछें भैरव दण्ड दे हें'' ये बात असत्य होयगी. तथा काशीके जीवन्कुं मरे पीछे शिवजी 'तार-कब्रह्म'मन्त्रको उपदेश दे हें ये लिख्यो हे. सो वो अलौकिक मन्त्रोपदेश भी शिवजी सबन्कुं नहीं दे हें.

कभी तीर्थादिकन्सों शुद्ध भये कोई जीवकुं ही वो अलौकिक उपदेश दियो जाय हे. अतएव जाके उपर श्रीकृष्ण भग-वान् प्रसन्न होय हें वा ही जीवकी काशी आदि तीर्थन्में अलौकिक उपदेशके द्वारा मुक्ति करे हें. जेसें नामको माहात्म्य बढाय-वेके अर्थ महापापी अजामिलकी 'नारायण' नामसों ही मुक्ति करि दीनी एसे ही तीर्थको माहात्म्य जतायवेके अर्थ, जाके उपर भगवान् प्रसन्न होंय वाकी, तीर्थमें मुक्ति करे हें. तासों भगवान्के प्रसन्न होयवेके अर्थ प्रेमभक्ति करिवे वारे साधन करनो ही योग्य हे. कदाचित् प्रेमभक्ति विना कोई जीवकी मुक्ति तीर्थमें हो जाय तो जाननोंकी वो जीवने भक्तिके साधन पूर्वजन्ममें कर-लीने होंयगे. या जन्ममें, सम्भवत:, वो भगवान्कि इच्छासों वासनाके आधीन होयके संसारमें आसक्त हतो।।४७।।

तर्हि तीर्थादेः क उपयोग:? इति चेत्, तत्र आह सेवकम् इति.

सेवकं कृपया कृष्णः कदाचिन्मोचयेत्क्वचित्।। तन्मूलत्वात् स्तुतिस्त्रस्य क्षेत्रस्य विनिरूप्यते।।४८।।

सेवकमेव पूर्वं तथाभूतं, तत्रापि कृपयैव, तत्रापि कृष्णएव. कर्ता, साधनं व्यापारश्च उक्तः. काल-देशौ आह कदाचित् क्रचिद् इति. अनेन कालस्यापि ततएव प्रशंसा इति ज्ञापितम्. स्तुतानि तीर्थादीनि भगवदङ्गत्वाद् दैत्यकृतवि-घननाशकानि भवन्तीति लोकप्रवृत्यर्थं मुक्तिसाधकानि इति उच्यन्ते. तत्र स्थित्वा शुद्धे काले साधनानि साधयेद् इति।।४८।। तब फिर तीर्थादिकनुको कहा उपयोग हे? या प्रश्नको उत्तर देत हें.

भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करिके अपने सेवककों कदाचित् तीर्थादिकमें मुक्ति दे हें. याके फलस्बरूप उन क्षेत्रन्की मुक्तिसाधक कहीके स्तुति करी जाय हे.

तीर्थकी प्रशंसा करायवेके अर्थ तीर्थमें अपने भक्तकी भगवान् मुक्ति करे हें. एसे ही कालकी प्रशंसा करायवेके अर्थ उत्तरायण आदि कालमें कृपा करिके भक्तकी मुक्ति करे हें. जेसें द्रढ भक्त भीष्मिपतामहकी मुक्ति करिके उत्तरायण कालको माहात्म्य वढायो. जिन तीर्थन्की पुराणन्में महिमा हे उन तीर्थन्कुं भगवान्के अङ्ग जाननो. वे तीर्थ भगवान्की भक्ति बिगाड़वे वारे दैत्यन्के विघ्नन्कुं दूर करे हें. तासों ही लोकमें तीर्थन्को प्रचार होयवेके अर्थ ''तीर्थ मुक्ति देवे वारे हें'' एसें शास्त्रमें कह्यो हे. यासों तीर्थमें निवास करिके शुद्ध कालमें प्रेम-भक्ति साधनकुं साधनो योग्य हे. कोइ पुरुष ''भक्ति विना केवल तीर्थादिक-न्में रहिवेसों ही मेरी मुक्ति होय जायगी'' एसें समुझके भक्ति करनो छोड़ देगो वाकि मुक्ति नहीं होयगी।।४८।।

अतः केवलतीर्थाद्याश्रयं परित्यज्य यथा भगवति स्त्रोहो भवति तथा यत्नं कुर्याद् इति आह तस्माद् इति. तस्मात् सर्व परित्यज्य दृढविश्वासतो हरिम्।। भजेत श्रवणादिभ्यो यद्विद्यातो विमुच्यते।।४९।।

हरिभजनेऽपि कदाचित् मोक्षो न भवेद् इति आशङ्कां परित्यज्य दृढविश्वासं कृत्वा श्रवणादिभ्यो हेतुभ्यः श्रव-णादिभि: भजेत्. ततो विमुच्यतएव इति पुनरुक्तम्।।४९।।

तासों ''केवल तीर्थ आदिको आश्रय करिवेसों हु मेरी मुक्ति होय जायेगी'' एसो विचार छोडीके जा प्रकार भगवान्में स्बेह होय वा प्रकार यत्न करनों. अब मर्यादाभक्तिको वर्णन करें हें.

भिक्त करेसों भी कदाचित् मेरी मुक्ति नहीं होय एसो सन्देह नहीं राखनों. वेदमें लिखे भये श्रवण, मनन तथा निदि-ध्यासन ये तीन साधन करिके इनके करिवेसों भगवान् मेरी मुक्ति अवश्य करेंगे एसो द्रढ विश्वास होय जावे हे. फेर गीता-भागवतोक्त नवधा भिक्ति निरन्तर करते रहनो. एसें नवधा भिक्ति करतें-करतें रूनेह भिक्ति जब हो जाय हे तब अविद्यासों भी छूट जाय हे. अर्थात् अविद्यासों छूटिवेके अर्थ तथा विद्याप्राप्तिके अर्थ विद्याके पांच पर्वन्को अभ्यास करनो ये बात पहले कही हे. फेर विद्यासों भी छूटिके ब्रह्ममें प्रवेश होयवेके अर्थ श्रवणादि नवधाभिक्तिको अभ्यास निरन्तर करनों. ये बात या श्लोकमें लिखी हे।।४९।।

इदानीं कैमुक्तिकन्यायेन प्रेमभक्तेः फलम् आह ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् इति द्वाभ्याम्. ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् आत्मनैव सुखप्रमा।। सङ्घातस्य विलीनत्वाद् भक्तानां तु विशेषतः।।५०।। सर्वेन्द्रियैस्त्रथा चान्तःकरणैरात्मनापि हि।। ब्रह्मभावात्तु भक्तानां गृहमेव विशिष्यते।।५१।। साधनं भिक्तः मोक्षः साध्यः. तथापि साधनदशैव उत्तमा. तत्र हेतुः यो विमुच्यते स सङ्घातं पित्यज्य ब्रह्मणि लीयते, ब्रह्मभावं वा प्राप्नोति. तस्य स्वरूपानन्दः स्वरूपेण वा आनन्दानुभावः. स्वतन्त्रभक्तानां तु गोपिकादितुल्यानां सर्वेन्द्रियैः तथा अन्तःकरणैः स्वरूपेण च आनन्दानुभवः. अतो भक्तानां जीवन्मुक्त्यपेक्षया भगवत्कृपासिहतगृहाश्रमएव विशिष्यते।।५१।।

अब ये शङ्का होय हे के या प्रकार मर्यादाभिक्तिसों भी मोक्ष हो जाय हे फिर ख्वतन्त्र भिक्त अर्थात् प्रेमलक्षणा पृष्टि– भिक्तिमें कहा अधिकता हे? याको उत्तर आगेके श्लोकमें लिखे हें.

श्लोकार्थ : ब्रह्मानन्दमें प्रविष्ट जीवन्कुं केवल आत्मा द्वारा ही सुखकी अनुभूति होवे हे क्योंके उनके देहादि सङ्घातको लय हो जावे हे. किन्तु स्वतन्त्रपृष्टिभक्तिसों सम्पन्न भक्तन्के सम्बन्धमें वैशिष्ट्य ये हे के उनकुं सभी बाह्येन्द्रिय, अन्त:करण तथा आत्मा द्वारा भी विशेष रूपसों आनन्दकी अनुभूति होवे हे. यासों ही ब्रह्मभावकी अपेक्षा भक्तन्कों गृहस्थाश्रम ही श्रेयस्कर लगे हे.

'भक्ति' नाम पृष्टिभक्तिको भी हे तथा मर्यादाभक्तिको भी हे. अतएव पृष्टिभक्तिके साथ मर्यादाभक्तिको इतनो सजा-तीयपनो हे. मर्यादाभक्ति पृष्टिभक्तिकी सजातीय हे तथापि पृष्टिभक्तिकी साधनदशा हु मर्यादामार्गीय फलदशासों उत्तम हे, तब पृष्टिभक्तिकी फलदशाकी अधिकताको कहा वर्णन करनो ''सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा'' इत्यादि श्रुतिके अनुसार भग-वान् भक्तके आधीन होयकें पृष्टिमार्गीय भक्तकुं रसात्मक स्वरूपको पूर्ण अनुभव करावे हें. तथा श्रीभागवतमें साधन प्रकरणमें श्रीकृष्णचन्द्र श्रीयशोदाजीके श्रीहस्त्र करके उखलसों भी कृपाकिरके बंध गये हें. तब शुकदेवजीनें राजासों आज्ञा करी हे ''नेमं विरश्चो न शिवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया, प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् (भाग.पुरा.१०।९।२०) अर्थःकर्म-ज्ञान-भक्तिमार्गके शिरोमणि ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदिकन्कुं जो भगवान्की प्रसन्नता नहीं मिली सो यशोदाजीकुं प्राप्त भई. एसें ही ब्रजभक्तन्के कहेसों बाल्यावस्थामें पीढा आदि उठाय लावनों, नृत्य करवे लग जानों इत्यादि अनेक चिरत्र भक्ताधीन होयकें करे. पृष्टिमार्गीय फलदशामें तो भगवान् भक्तके देहेन्द्रियादिकन्में अपनो आवेश करकें बाहिर प्रकट होयकें सकल देहेन्द्रियन्ते द्वारा तथा आत्माके द्वारा भक्तन्कुं रसरूप स्वरूपको पूर्ण अनुभव करायके भी आप उन भक्तन्सों ये ही कहे हें कि ''में तुमारी भिक्तिको बदला सहस्रवर्षकरकें भी नहीं दे सकुं हुं''. जेसें गोपीन्के प्रति भगवान्के वाक्य पश्चाध्यायीमें ''न पारयेहं निरवद्यसं-युजां स्वसाधुकृत्यं विविधायुषािपवः (भाग.पुरा.१०।३२।२२) इत्यादिक लिखे हें, परन्तु ऐसी स्वतन्त्र पृष्टिभक्ति दुर्लभ हे, तासों यहां मुख्यफलको वर्णन मूलमें नहीं कियो हे. याको वर्णन विस्तारसं सेवाफल ग्रन्थके विवरणमें लिख्यो हे.

मर्यादामार्गमें तो मर्यादाभक्ति साधन हे तथा मोक्ष साध्य हे. जो मुक्त होवे हें वे देहादिकन्कुं छोड़के अधिकारानुसार अक्षरब्रह्ममें अथवा पुरुषोत्तममें लीन होय हें अथवा ब्रह्मभावकुं प्राप्त होवे हें. उनकुं केवल आत्मा करिके हि स्बरूपके आन-न्दको अनुभव होवे हे।।५०।।

पुष्टिभक्तन्कुं तो सर्व इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा आत्मा इन सब करिकें स्वरूपानन्दानुभव होवे हे. तासों जीवन्मुक्तकी अपेक्षा पुष्टिभक्तन्को भगवत्सेवापरायण होयकें भगवत्कृपा सहित गृहस्थाश्रम ही उत्तम हे. क्योंके भगवान् उन भक्तन्कुं सेव्य-स्वरूप करिकें हि देहेन्द्रियान्तःकरणद्वारा स्वरूपानन्दको अनुभव करावे हें, जेसें पद्मनाभदासजी आदि पुष्टिभक्तन्कुं भयो हे. ताहीसों ''प्रतिकूले गृहं त्यजेत्'' या वाक्यमें सेवाको विरोधि गृह होय तो वाको त्याग करनों लिख्यो हे.

पुष्टिसेवाके तीन फल लिखे हें १.अलौकिकसामर्थ्य:भगवान्के आवेश करकें रसरूप पुरुषोत्तमके स्बरूपानन्दके अनुभव करिवे योग्य हो जानों. २.सायुज्य:पुरुषोत्तममें लय अथवा आभूषणादिरूप हो जानों. ३.सेवोपयोगी देह:अर्थात् देहेन्द्रियादिरहित अक्षरब्रह्मरूप देहकी प्राप्ति वैकुण्ठादिकन्में हो जानी. इन तीनों फलन्को देनों भगवान्के आधीन हे. ओर ये तीनों फल उन जीवन्कुं मिले हें जे जीव पुष्टिसृष्टिके होवे हें. उन जीवन्के लक्षण पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ग्रन्थमें लिखे हें. काल-कर्म-स्बभावकुं रोकवे वारे भगवान्के अनुग्रहको नाम 'पुष्टि' कहे हें।।५१।।

ननु एवं सित साधन-फलयो: उत्कृष्टत्वात् कथं सर्वोऽपि न भक्तिमार्गे प्रविशति? इति चेत्, तत्र आह मोहा-र्थशास्त्रकलिलम् इति.

मोहार्थशास्त्रकलिलं यदा बुद्धेर्विभिद्यते।। तदा भागवते शास्त्रे विश्वासस्त्रेन सत्फलम्।।५२।।

शास्त्राणि यानि भगवच्छास्त्रव्यतिरिक्तानि मोहार्थानि तान्येव कलौ मानम् अर्हन्ति. अत: तेषां दर्शनेन बुद्धौ किललम् उत्पद्यते. तच्चेद् विभिद्यते भगवत्कृपया तदैव भागवते शास्त्रे विश्वास:. एतदुक्तं सर्वाथा सत्यम् इति. तत: तद्नुसारेण प्रवृत्त: सत्यं फलं प्राप्नोति इति अर्थ:।।५२।।

शङ्का : यदि एसी बात हे तो साधन तथा फल दोनोंन्के उत्कृष्ट होवेसों सब लोगन्की प्रवृत्ति स्वतन्त्र भक्तिमार्गमें होनी चहिये, एसो, परन्तु, देखिवेमें तो नहीं आवे हे या शङ्काको उत्तर देत हें.

श्लोकार्थ : जा समय मोहक शास्त्रन्को मेल बुद्धिमेंसुं दूर हो जाय हे ता समय भगवदुक्त तथा भगवत्प्रतिपादक शास्त्रमें विश्वास, तथा भागवतशास्त्रमें विश्वाससों सत्फलकी प्राप्ति होवे हे.

जब पृष्टिमार्गीय स्वतन्त्र प्रेमलक्षणा भक्तिको साधन तथा फल सबमार्गन्के साधन-फलसों अत्यन्त उत्तम हे तो सब ही मनुष्य या भक्तिमार्गमें क्यों नहीं प्रवृत्त होवे हें? ताको ये उत्तर हे कि वेद, भगवत्गीता आदि भगवच्छास्र विना अन्य जितने शास्त्र हें वे सब मनुष्यन्कुं मोह करायवेके अर्थ बनाये हें. उन शास्त्रन्कुं किलयुगमें बड़े माने हें. उनके देखिवेसों बुद्धि मिलन हो जावे हे. जब भगवान्की कृपासों बुद्धिको मल दूर होय तब भगवच्छास्त्रमें विश्वास होय अर्थात् भगवच्छास्त्रमें जो कह्यो हे सो सब साचो हे एसी द्रढता होय. फेर वाके अनुसार सदा वर्ताव राखे तब वाकुं साचो फल मिले हे. अर्थात् इन्द्रिय-न्में तथा अन्तःकरणमें आनन्द प्रकट होवे हे।।५२।।

या प्रकार यहां सत् प्रकरण सम्पूर्ण भयो हे. यामें कितनेक वादी जगत्कुं मिथ्या मानके, जगत्के बीचमें भगवान्की भक्ति भी आ गई तासों वाकुं भी मिथ्या कहे हें उनकी शङ्कान्को समाधान कियो हे.